

ब्रह्मलीन श्री १००८

स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज

५०वाँ महा समाधि दिवस

स्मारिका

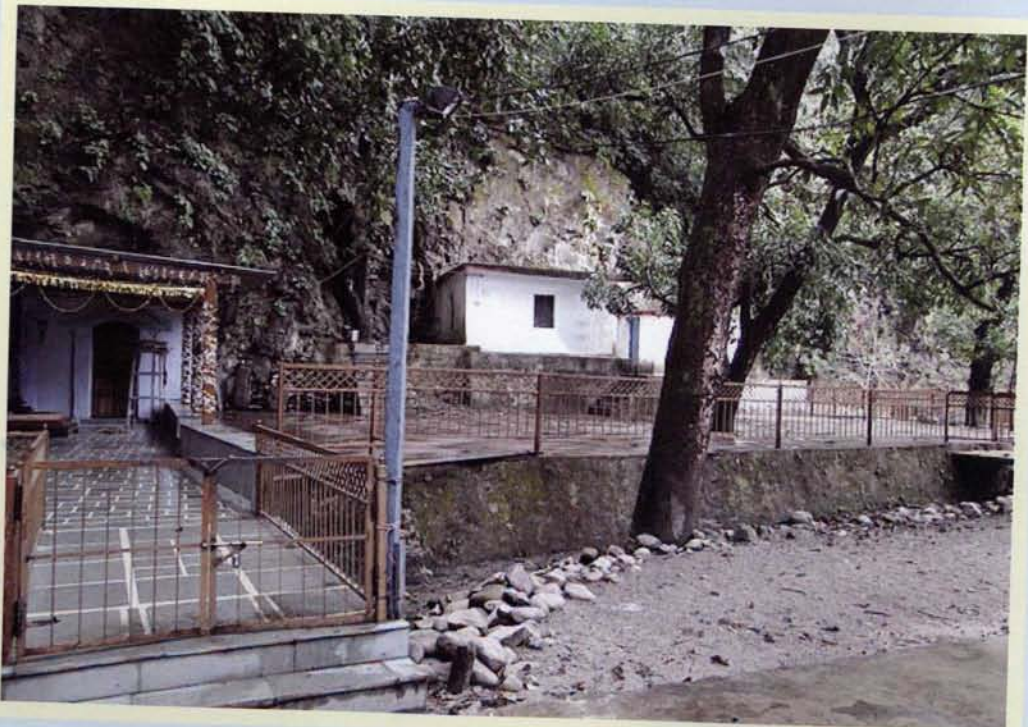
शिवरात्रि-२०११

श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट

वशिष्ठ गुहा आश्रम, गूलर डोगी, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड



श्री गुरु महाराज जी का समाधिकक्ष



श्री गुरु महाराज जी का समाधिस्थल (निर्मित 1960)

शुमारिका

ब्रह्मलीन श्री १००ॢ

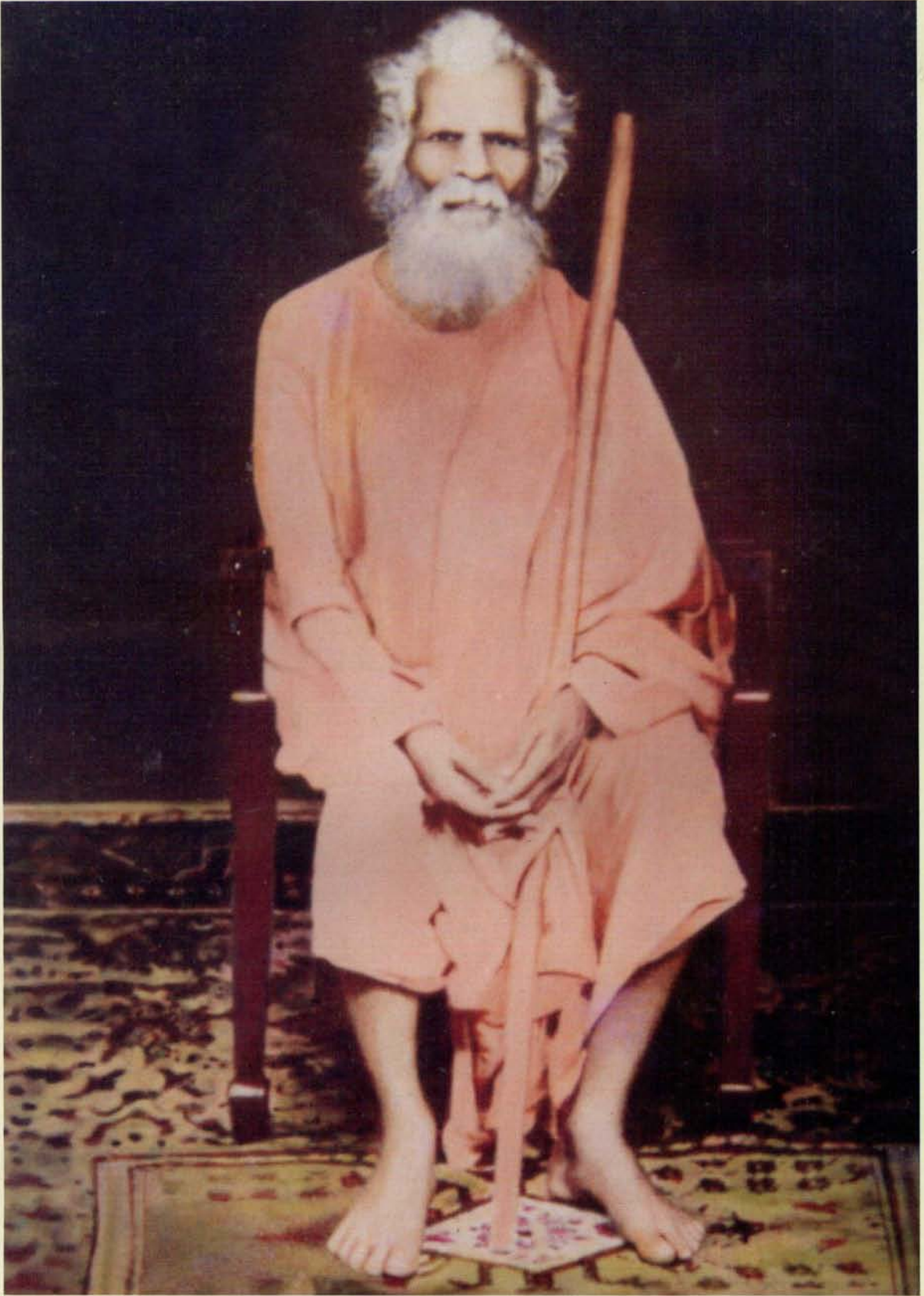
स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज

का

50वाँ समाधि दिवस

०२ मार्च २०११

स्वामी चैतन्यानन्द  
श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट  
वशिष्ठ गुहा आश्रम  
गूलर डोगी,  
टेहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

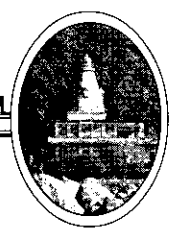


श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज

## हम क्या खोज रहे हैं - आनन्द!

जिस की खोज में हम हैं वह हमारे भीतर ही है। हममें दिव्य और अक्षय आनन्द का महासागर लहरा रहा है। जिसकी एक ही बून्द हमें सर्वदा के लिए आत्म-विभोर करने की शक्ति रखती है तथा हमारे समस्त क्लेशों का पूर्णतया नाश कर सकती है। किन्तु मूर्खतावश इसे हम बाहर ढूँढते हैं। स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति, नाम और यश के द्वारा आनन्द प्राप्ति की कल्पना मिथ्या और भ्रमपूर्ण है। हमारी दशा ठीक उस मृग की भांति है जो अपनी नाभि में कस्तूरी धारण करता है किन्तु स्वयं इसका रहस्य नहीं जानता और अपने चारों ओर की वस्तुओं, लता, वृक्ष तृण आदि में उसकी दिव्य सुगन्धि को ढूँढता फिरता है। अतएव महर्षियों द्वारा प्रणीत उपदेश ही विशुद्ध, सात्विक और चिरस्थायी आनन्द प्रदान करते हैं।

- श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज



## पुरुषोत्तम धाम का पावन संदेश

इस धरती पर जहाँ प्रकृति अपनी मनमोहक नैसर्गिक सुषमा से सम्पन्न मिलती है अपने आप में तीर्थ के समान विदित होती है ऐसे रमणीक वातावरण में ईश्वरीय सत्ता का स्वतः अनुभव होता है। 'वशिष्ठ गुहा आश्रम— हिमालय के सुरम्य तथा पावन गंगा तट पर प्रतिष्ठित एक ऐसा ही रत्नतीर्थ है जो ऋषिकेश—बद्रीनाथ मार्ग पर स्थित है।

यहाँ आने वाले को एक विशिष्ट शक्ति की आत्मानुभूति होती है। वास्तविकता यह है कि अनवरत सदियों से ऋषियों महात्माओं की तपोस्थली होने के कारण यह स्थान अनेक ज्ञात—अज्ञात महात्माओं के सान्निध्य की आध्यात्मिक तरंगों से परिपूर्ण है। विगत शताब्दी में हमारे सर्वप्रिय गुरु महाराज श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी ने भी इसी स्थान को अपनी तपोस्थली के रूप में चुना।

श्री गुरुमहाराज की 'महासमाधि अर्द्धशती' शिवरात्रि २ मार्च २०११ के पावन अवसर पर उनके शिष्यों तथा भक्तों द्वारा उनको समर्पित श्रद्धा सुमन और अतीत तथा वर्तमान में उनके द्वारा व्यक्त हृदयोद्गार एक स्मारिका के रूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत है। इसमें श्री गुरुमहाराज के कुछ निर्देशों, सन्दर्भों तथा उपदेशों को उनके आशीर्वाद स्वरूप समाहित किया गया है।

निःसन्देह श्री गुरुमहाराज जी का जीवन चरित आध्यात्मिक ऊर्जा, परमेश्वर प्रेरणा का प्रबल स्रोत है।

उनके पावन चरित्र के अनन्त आयाम हैं' जिनको सम्पूर्ण रूप से समाहित कर पाना किसी साधारण मानव के लिए संभव नहीं है। श्री महाराज जी को जिस व्यक्ति ने, जिस रूप में देखा, उसको उनके उसी रूप के दर्शन हुए और वे उसी रूप में उस भक्त के आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक बन गए। परन्तु ये निर्विवाद, सत्य है कि उनकी कृपा दृष्टि समान रूप से सभी भक्तों पर बराबर से बनी रही।

बस अपेक्षा इसी बात की है कि भक्त गण अपनी परमार्थिक पात्रता को प्रगतिमान करने के लिए निरन्तर पुरुषार्थ करते रहें और अपनी सूक्ष्म चेतना में उनका कल्याणकारी अनुग्रह प्राप्त करते रहें। मेरे विचार से श्री महाराज जी के प्रति उनकी यही सच्ची पुष्पांजलि है।

मेरी शुभकामना है कि सभी साधकों और श्रद्धालुओं का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास होता रहे, एवं निरन्तर कल्याण होता रहे। श्री महाराज जी से ऐसी ही हमारी प्रार्थना है।

इस 'स्मारिका' में प्रकाशित पाठ्य सामग्री तथा चित्रों के संकलन उनके प्रकाशन एवं मुद्रण में जिनका श्रद्धालु सहयोग रहा है उन सभी महानुभावों को मेरी शुभकामनायें जिनके प्रयासों से 'स्मारिका' अपने वर्तमान स्वरूप में प्रकाशित हो पायी है। उन सभी को श्री गुरु महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हो।

दिनांक : २ मार्च, २०११

स्वामी चैतन्यानन्द

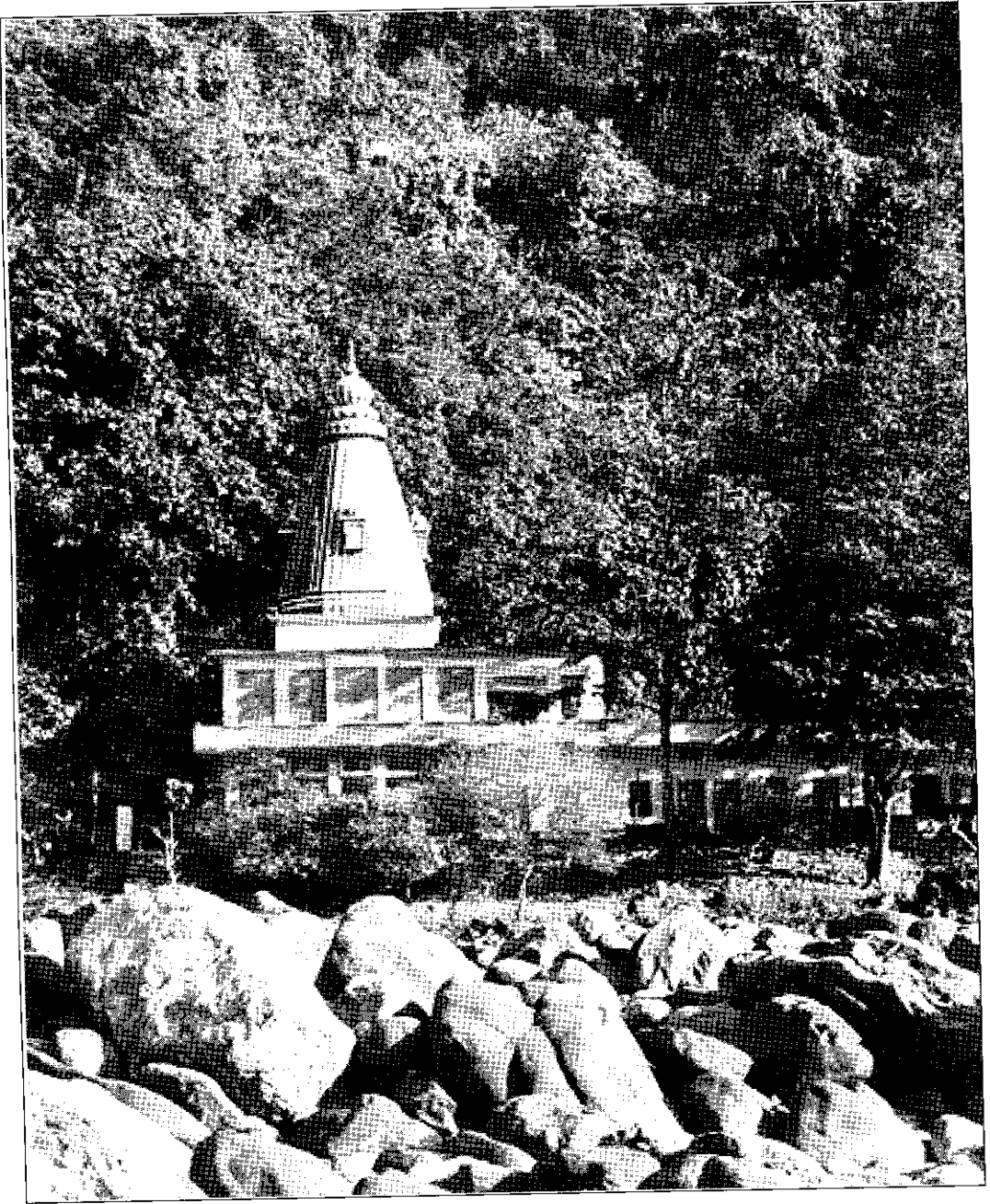
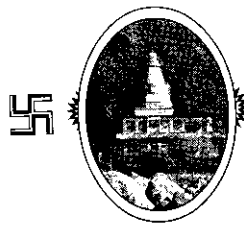
श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट

वशिष्ठ गुहा आश्रम

गूलर डोगी, जिला—टिहरी, गढ़वाल

(विश्वस्यते)





गंगा तट से मंदिर का एक दृश्य

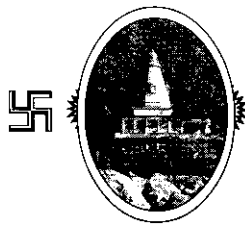




## अनुक्रम

क्रमांक	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	मंगलाशंसा	रघुवीर आनंद पुरी	१
२.	श्री गुरु महाराज जी का जन्म दिवस पर संदेश		२
३.	गीता की झलक	स्वामी पुरुषोत्तमानन्द	३
४.	ब्रह्मकीर्तनम्	स्वामी पुरुषोत्तमानन्द	५
५.	निगुर्ण स्तोत्र	स्वामी पुरुषोत्तमानन्द	७
६.	ज्ञान कुम्भी (हिन्दी काव्यानुवाद)	योगेश प्रवीन	८
७.	ईश्वर कारुण्यम् के कुछ मुख्य अंश	स्वामी चैतन्यानन्द	६
८.	महासमाधि	स्वामी चैतन्यानन्द	१२
९.	पुरुषोत्तम-गाथा	स्वामी बालानन्द	१६
१०.	श्री गुरुदेवाय नमः	स्वामी कालिकानन्द	२०
११.	श्री गुरुमहाराज के एक शिष्य- स्वामी भूमानन्द		२१
१२.	श्री गुरुमहाराज की आरती	डॉ. एस.एन. श्रीवास्तव	२३
१३.	श्री सद्गुरु सान्निध्य	स्वामी रघुवीर-आनन्दपुरी	२४
१४.	ॐ (कविता)	सुपर्णा वर्मा	२६
१५.	श्री गुरु चरणों में	स्वामी चैतन्यानन्द	२७
१६.	गुरु-स्मृति	स्वामी पुरहरानन्द	३२
१७.	गुरु वन्दना	सुपर्णा वर्मा	३४
१८.	महाराज जी से प्रथम भेंट- एक अनुभव	स्वामी ज्ञानानन्द गिरि	३५
१९.	श्री सद्गुरु का प्रसाद	हंसराज नागर	३७
२०.	मेरे सद्गुरु	भागीरथ लाल	३८
२१.	श्री महाराज जी तथा मेरे कुछ संस्मरण	सीताराम श्रीवास्तव	४०
२२.	गुरु महाराज	सुशीला जर्मनीदास	४२
२३.	मैं कैसे बची	शान्ति मेहरोत्रा	४२
२४.	अहैतुकदयासिन्धुः, बन्धुरानमतां सताम्	डा. वीरेन्द्र कुमार शर्मा	४३
२५.	ॐ श्री सतगुरुभ्यो नमः	सावित्री खेत्रपाल	४६
२६.	मेरे परम प्रिय गुरुमहाराज जी	उर्मिला कांती श्रीवास्तव	४८
२७.	ॐ श्री गुरुदेवाय नमः	आर. एल. चौधरी	५०
२८.	ॐ गुरु महाराज - मेरे संस्मरण	उषा	५२
२९.	मेरी अभिलाषा	उषा	५३
३०.	गुरु महाराज और स्वामी जी	सतीश कुमार	५४
३१.	लखनऊ का पावन तीर्थ शुक्ला घाट	योगेश प्रवीन	५६
३२.	गुरु दक्षिणा	योगेश प्रवीन	६३
		एक शरणागत	





# Contents

S.No.	Subject	Writer	Page No.
1.	Mangalashansa (English Translation)	Swami Shantanand	63
2.	Teachings of Sri Swami Purushottamanand Ji on Srimad Bhagawat		64
3.	The Sat-guru	Swami Purushottamananda	65
4.	Nirmala Vani	Swami Purushottamananda	68
5.	Jnanakkummi English Translation	Swami Nirvedananda	70
6.	Incidents from Biography of Swami Purushottamanand Ji		72
7.	Guide to Spiritual Aspirants (English Translation)	Swami Nirvedananda	73
8.	I Meet My Master	Swami Nishchalananda	75
9.	At The Feet of My Guru	Swami Nirvedananda	77
10.	The Guru	Swami Nirvedananda	79
11.	The Light of Vashishtha Guha	Swami Krishnananda	83
12.	My Sacred Reminiscences	Swami Sankarananda	84
13.	My Beloved Guru Dev of The Cave	Swami Shantananda	86
14.	My Guru Dev	Swami Santananda	89
15.	A Message from the President "The Divine Life Society"	Swami Vimalananda,	92
16.	Mangalashansa (English Translation)	Swami Padmanabhananda	93
17.	A Brief Life Sketch of Swami Purushottamananda Ji The Sage of Vashishtha Guha"	Swami Satprabhananda	94
18.	I Met The Lord	Swami Purushottam Das	97
19.	Vashist Guha - A Yogapeeth	Brahm Sarup Khetrapal	98
20.	An English Saint of Rishikesh	Dr. A. N. Srivastava	99
21.	A Unique Experience	Dr. M.C. Mehrotra	100
22.	Smile	Dr. M.C. Mehrotra	100
23.	Vashishtha Guha : The Godly Institution	Sushilesh Mohan Sahai	101
24.	Vashishtha Guha : Teenagers' Perspective	Shreshtha Shruti	103
25.	Wonderful Association With Vashishtha Guha	Pavitra Sahai	104
26.	The Purushottamanand Trust Vashishtha Guha Ashram (Report)		105

ॐ

मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं गरुडध्वजः ।  
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः ॥

## मंगलाशंसा

श्री रामकृष्ण मठ - मिशन बेलूर, कोलकाता की एकाधिक शाखाओं में अनेक वर्षों तक समर्पित एवं समर्थ संचालक रूप से अनुष्ठित सेवा के फलस्वरूप प्राप्त चित्तशुद्धिरूप वैराग्य ही जिनका सर्वस्व था, ऐसे गुरुवर स्वामी श्री पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज के रिक्त-हस्त होकर वसिष्ठ गुफा में स्थिरवास करने से ही आपकी ईश्वर भक्ति एवं पुण्यसलिला श्री गंगा माता के प्रति भक्ति निष्ठा स्पष्ट है। अतः आपने अपने साधनाकाल में श्री गंगामाता के गुण-कीर्तन करते हुए संस्कृत भाषा में ही "गंगास्तोत्र" की रचना की जिसके आलाप के श्रवण से हर्षोत्तलसित होकर वसिष्ठ गुफा के निकट आविर्भूत होकर श्री गंगा माता अपने भक्त की मंगल-कामना करती हैं :-

### गंगामाता उवाच

मङ्गलं पुरुषोत्तम ! ज्ञानभक्तिस्वरूपिणे ।

त्यागवैराग्यरूपाय तपसायास्तु मङ्गलम् ॥

हे पुरुषोत्तम, तुम्हारा कल्याण हो। ज्ञान तथा भक्ति तो आपके स्वरूप हैं; त्याग और वैराग्य तो आपका रूप धारण किये हैं। हे तपस्विन्? आपका मंगल हो।

घनकाननमध्यस्था वसिष्ठाख्या गुहा शुभा ।

अत्रान्तेवासिभिः साकं तपोनिष्ठाय मङ्गलम् ॥

आप घने जंगलों के बीच स्थित पवित्र वसिष्ठ गुहा में अपने शिष्यों सहित तपस्या में संलग्न हैं। आपका मंगल हो।

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं भोगं बुद्ध्या सुदूषितम् ।

त्यक्त्वा तं तप आस्थाय स्थितस्येहास्तु मङ्गलम् ॥

आप ने अपनी बुद्धि से निश्चित कर लिया कि इस दुनियाँ के तथा स्वर्ग आदि दूसरे लोकों के सारे भोग दोषयुक्त हैं (दुःस्वदायी हैं) और उन सब भोगों का त्याग करके यहाँ (गुहा में) तपस्या में व्यस्त हैं। आपका मंगल हो।

कर्म ज्ञानं तथा भक्तिः तिस्रोऽप्येताः सुसाधनम् ।

स्वाचारैः स्थापितं येन तस्मा अस्तु सुमङ्गलम् ॥

आप अपने ही जीवन में उत्तरकर (आचरण से) स्थापित कर दिया कि कर्म, ज्ञान तथा भक्ति तीनों ही मोक्ष के लिये सर्वोत्तम साधन हैं। आपका कल्याण हो।

कुञ्जरा बलवन्तोऽपि सिंहाद् विभ्यन्ति दुर्बलात् ।

शास्त्रवादरताश्चैवं भीतास्त्वतोऽस्तु मङ्गलम् ॥

बलवान हाथी भी एक दुर्बल सिंह से भयभीत हो जाते हैं। इसी तरह जो पण्डित लोग शास्त्रों के विषयों में वाद विवाद में ही रुचि लेते हैं वे आप से भयभीत हो जाते हैं।

द्वैतवादिमुखानीत्यं योगवेदान्तयुक्तिभिः ।

तद्यः पिधातुं दक्षायाऽऽचार्यायास्तु सुमङ्गलम् ॥

आप तो द्वैतवादियों के मुंह को योग और वेदान्त की सुचारु युक्तियों से बन्द करने में अतीव समर्थ हैं। आप जैसे आचार्यका मंगल हो।

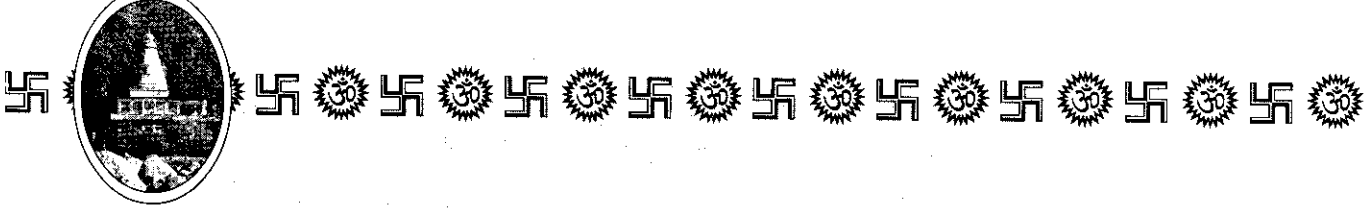
मङ्गलं पदमनाभोऽस्तु मङ्गलं पदमनाभवः ॥

मङ्गलं गिरिजानाथो मङ्गलायतनं गुरुः ॥

इति आनन्दपुरिकृतं मङ्गलपदकं

सम्पूर्णम्

श्री स्वामी शांदानन्द जी द्वारा हिन्दी अनुवाद



## श्री गुस्महाराज जी का जन्म दिवस पर संदेश

( वशिष्ठ गुहा, 1 दिसम्बर, 1957 )

यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। एक चीज सदैव हम लोगों के साथ होती है। हम जहां कहीं भी जाएं वह निश्चित रूप से हमारे पीछे पीछे चलती है। क्या तुम जानते हो वह क्या है- यह वह है जिसे हम मृत्यु कहते हैं। कब हमें यहां से चल देना है यह किसे पता है? परन्तु हमारी प्रत्येक कृति में यही विश्वास दिखाई देता है कि हमें जीवित और बहुत लम्बे समय तक जीवित रहना है। तुम अचानक पकड़े जाते हो। और तुम्हें बार-बार वापस लौटना पड़ता है। कृपा करके इस पर विचार करो- तुम सबसे बड़े बुद्धिमान हो। परन्तु क्या तुम देखते हो कि तुम पहले से ही मृत्युमुख में हो?

तुम किस प्रकार मृत्यु पर विजय पा सकते हो? यह बड़ा सरल है, विचार करो, विचार करो कि तुम क्या हो? अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल डुबो नहीं सकता, वायु उड़ा नहीं सकती। हाँ, तुम वही मूल वस्तु हो। 'मैं' वह आत्मा हूँ। पूर्ण मुक्त और पूर्ण आनन्द-एकमेवाद्वितीयम्। समस्त 'मैं', सर्वव्यापक 'मैं' और 'मैं' - सत् चित् आनन्द।

कृपा करके इस अनुभव हेतु प्रयत्न करो।

□□



## गीता की झलक

ॐ

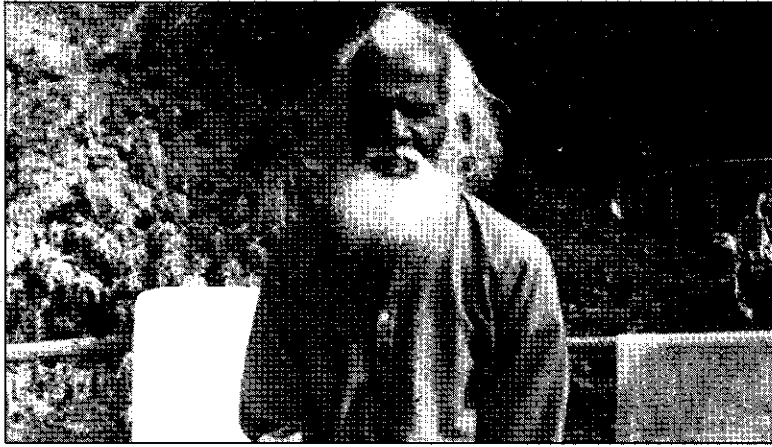
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।

प्रणतक्लेशनाशाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ जो असीम और शाश्वत हैं, जिन्होंने निराकार और अजन्मा होते हुए भी भक्तों के लिये नाम तथा रूपों को स्वीकार किया है, जो वासुदेव, हरि, गोविन्द आदि अनेक नामों से पुकारे जाते हैं तथा जो उन भक्तों के दुःखों एवं पीड़ाओं को क्षणमात्र में नष्ट कर देते हैं, जो भक्त उनके चरणों में विनत होकर प्रणाम करते हैं और जो उन्हें ही अपना एकमात्र गुरु, रक्षक एवं माता-पिता मानते हैं।

सीतापुर निवासी पंडित चांदनारायण हरकौली स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी के निकट मित्रों में से एक थे। स्वामीजी के अनुसार वे गृहस्थ के वेष में साधु ही थे। संसार में रहते हुए भी उनका जीवन जल में पद्मपत्र के समान ही था। साधु सेवा उनकी मुख्य साधना थी। एक बार उनके घर निवास के दौरान श्रद्धालु भक्तों के आग्रह पर स्वामीजी ने श्रीमद्भगवद्गीता पर जो प्रवचन दिये थे, उन्हीं का हिन्दी अनुवाद अनेक वर्ष पूर्व एक छोटी सी पुस्तिका 'गीता की झलक' के रूप में प्रकाशित हो चुका है। मूल पुस्तक 'A Peep into The Gita' शीर्षक से अंग्रेजी में वर्ष १९५३ में प्रकाशित की गयी है। पुस्तक के अन्त में दिया गया उपसंहार नीचे प्रस्तुत है।

मैंने गीता के कुछ प्रमुख उपदेशों को तुम्हारे सामने रखने का प्रयास किया है। हम कुछ वास्तविक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। को लाभः। आत्मावगमो हि यो वै। सच्चा लाभ क्या है? अपने स्वयं की आत्मा का ज्ञान। अपनी आत्मा को जानो और मुक्त हो जाओ। यही हमारे जीवन का लक्ष्य है। यह संसार प्रलोभनों से भरा पड़ा है। हम प्रलोभनों के जाल में जकड़ लिये जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। प्रलोभनों का सामना करने के लिये हममें असाधारण बल होना चाहिए। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। यह आत्मा दुर्बलों के लिए नहीं है।



अर्जुन लड़ने से हिचकिचा रहा था। परन्तु श्रीकृष्ण ने उसे एक बलवान व्यक्ति बना दिया। सुनो, अर्जुन क्या घोषणा कर रहा है—

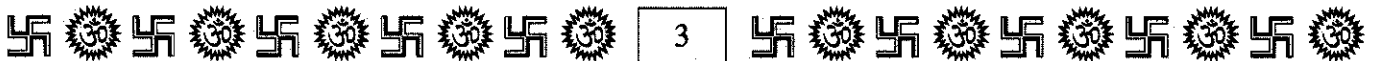
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा  
त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

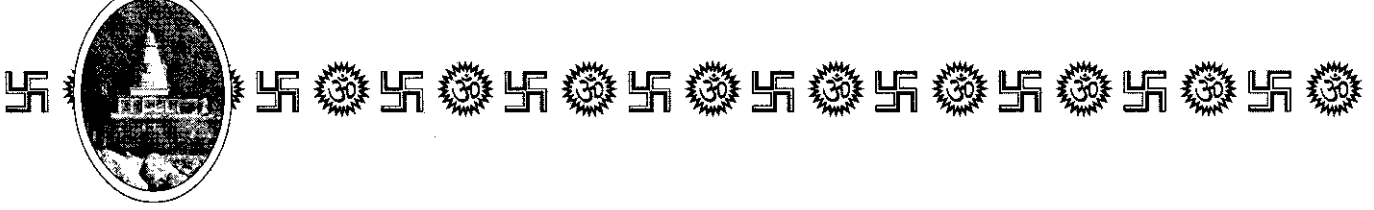
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः  
करिष्ये वचनं तव ॥

‘हे भगवान् ! आपकी कृपा से मेरा सारा मोह और अज्ञान नष्ट हो गया है। मुझे अपनी वास्तविक प्रकृति का ज्ञान हो गया है। मेरी सभी शंकाएं मिट गयी हैं और मैं अपनी आत्मा में पूर्णतया स्थित हो गया हूँ। मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये तत्पर हूँ।’

यदि हममें सच्ची लगन और श्रद्धा हो, तो गीता हमें मुक्ति की अवस्था तक ले जायेगी। गीता में कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग— इन सभी मार्गों का बड़ा ही मधुर समन्वय हुआ है। ये सभी जीव की उन्नति के लिये परम आवश्यक हैं। हमारे कष्टों और चिन्ताओं का कारण हमारा अज्ञान है। अज्ञान का नाश केवल ज्ञान से ही

गयी हैं और मैं अपनी आत्मा में पूर्णतया स्थित हो गया हूँ। मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये तत्पर हूँ।’





हो सकता है। ज्ञान का प्रकाश केवल पवित्र मन में ही प्रकाशित होता है। ये सभी योग हमारे मन को पवित्र करने के उपाय हैं। ज्ञान दो प्रकार का होता है— सैद्धान्तिक और व्यावहारिक— परोक्ष तथा अपरोक्ष। परोक्ष साधन है और अपरोक्ष साध्य है। आइये, हम लोग अपने जीवन को इस प्रकार से ढालने का और उसे वह रूप देने का प्रयास करें जिसकी गीता हमसे अपेक्षा करती है। घमंडी और अहंकारी मत बनो। अहिंसा के नियमों का पालन करो, प्रसन्न चित्त से सभी कष्टों को सहो, सीधे, सरल, निष्कपट बनो। सच्चे गुरु की खोज करो और अपने संपूर्ण हृदय से उनकी सेवा करो। अपने मन और शरीर को पवित्र रखो। संशय में मत पड़ो। दृढ़ निश्चयी बनो। मन पर नियन्त्रण रखने का अभ्यास करो। इन्द्रियसुखों के पीछे मत दौड़ो। देहभावना से ऊपर उठने का प्रयत्न करो। अपनी आंखें खोलो और जन्म, मृत्यु, रोग, वृद्धावस्था आदि जीवन के तथ्यों का अवलोकन करो।

संसार का अध्ययन करो और अपने तथाकथित घर, पत्नी तथा बच्चों में आसक्त मत होओ। चाहे सुख आये या दुःख—दोनों का स्वागत करो। साहस मत खोओ, सदा स्थिर और शान्त रहो। उस परमात्मा में श्रद्धा और भक्ति रखो। शान्त और एकान्त स्थान का आश्रय लो। सांसारिक विचारधारा रखने वाले लोगों में मत घुलो—मिलो। गीता, उपनिषद् आदि पुस्तकों का अध्ययन करो और उनके सच्चे भाव को समझने का प्रयास करो।

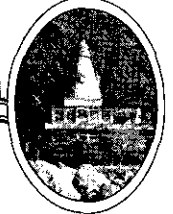
केवल इसी प्रकार तुम उस परमात्मा का साक्षात्कार कर सकोगे, जो आत्मा है। यह अपरोक्ष ज्ञान है।

तुम भगवान् में उसी प्रकार लीन हो जाओ, जिस प्रकार नमक की गुड़िया समुद्र में घुलकर उससे एकाकार हो जाती है।

ॐ तत् सत्



आश्रम से गंगा जी का एक दृश्य



## ब्रह्मकीर्तनम्

स्वामी पुरुषोत्तमानंदजी महाराज द्वारा मूल मलयालम में यह रचना सन् १९२६ के आसपास की थी जब वे ब्रह्मपुरीस्थित गुहा में निवास कर रहे थे। सन् १९४६ में जब इस 'ब्रह्मकीर्तनम्' का एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशन हुआ तब दि. २२/५/४६ को इसकी भूमिका लिखते हुए महाराज जी ने लिखा है—

'इस कीर्तन की रचना मेरे द्वारा करीब बीस वर्ष पूर्व हुई थी जब मैं ब्रह्मपुरी के निकट एक गुहा में निवास कर रहा था। यहां मैं यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि यह रचना प्रगट होने के पीछे मूलतः मेरे मन की शंकरवेली गृह की माताजी के प्रति वही श्रद्धा तथा भक्ति कारण है जो मेरी अपनी माता के प्रति मेरे मन में है तथा यह रचना करते समय मेरे मन में शंकरवेली गृह की माताजी ही थीं। करीब ८-१० दिन पूर्व अचानक ही इस 'ब्रह्मकीर्तनम्' का कुछ अंश (श्लोक क्र. ३) मेरे मन में गूँजने लगा तथा संपूर्ण रचना पुनश्च प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई। मैंने तुरंत श्री परमेश्वरन् पिल्लै (तिरुवल्ला स्थित शंकरवेली गृह की माताजी के सुपुत्र) को पत्र लिखा और उन्होंने कृपापूर्वक मुझे मूल पांडुलिपि भेज दी। जब मैंने इसे पुनश्च संपूर्ण पढ़ा तब मुझे एक विशेष आनंद की अनुभूति हुई और इसे एक पुस्तिका के रूप में छपवाकर इसका वितरण करने की इच्छा हुई जिससे कि अन्य लोग भी इससे लाभान्वित हो सकें। और यह पुस्तिका वही इच्छा पूर्ण होने का फलस्वरूप है।'

महाराजजी के जीवन चरित्र में शंकरवेली गृह की माताजी का उल्लेख आता है जो महाराजजी के युवा जीवन के प्रारंभिक दिनों में अकसर उन्हें अपने घर बुलाया करती थीं, उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन इत्यादि कराया करती थीं तथा उनके प्रति मातृवत् स्नेह रखती थीं। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि महाराजजी ने यह रचना उन्हीं की स्मृति को समर्पित की है।

### मङ्गलाचरण :-

श्रीवल्लभ हरे वासुदेवाच्युत  
श्रीवत्सकौस्तुभहारि वनमालिन् ।  
मायापते परिपालय मानिशं  
आलयं मालय कालकालर्चित ॥

हे श्रीवल्लभ (अर्थात् लक्ष्मीपते), हे हरि, हे वासुदेव, हे अच्युत, श्रीवत्सचिन्ह तथा कौस्तुभ धारण करने वाले, हे वनमाली, माया को जीतनेवाले (अथवा लक्ष्मीदेवी के निवासभूत देव) मृत्यु को जीतनेवाले शिवजी से पूजित, जबतक मेरे मन, बुद्धि और अहंकार आप में पूर्णरूप से लीन न हो जाएं तबतक सदा के लिये मेरी रक्षा करो।

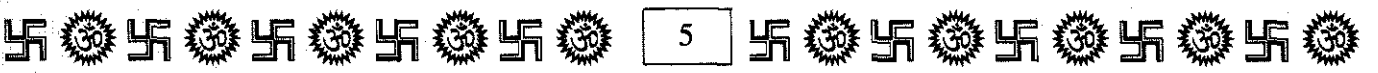
अच्युतानन्त नमस्ते नमो नमः  
सच्चिदानन्द समस्त जगत्प्रभो ।  
उच्चरिक्काकणे निन् तिरुनामडल  
उच्चन्तिक् एकाग्रचित्तमोडुं सदा ॥१॥

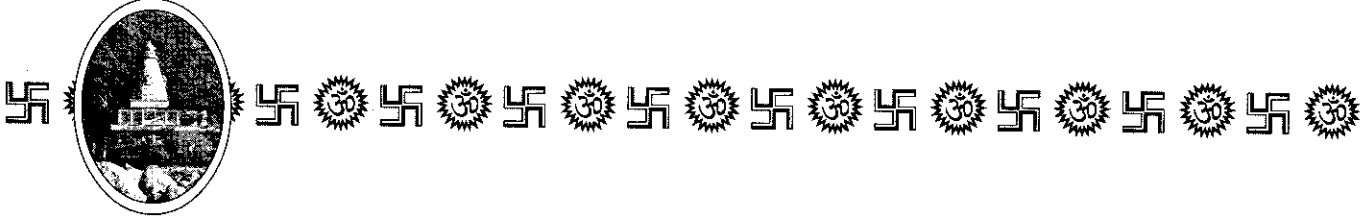
हे अविकारी तथा अनन्त देव! आपको बारम्बार मेरे नमस्कार। हे सच्चिदानन्द, सारे जगत् के स्वामी! मैं आपके पवित्र नामों को उच्च स्वर में एकाग्रचित्त के साथ सदा उच्चारण (कीर्तन) करने योग्य बन जाऊँ।

आश्चर्य आश्चर्य ओर्तुकाणीदुकिल्  
अच्छनुं पुत्रनुं मिधनादियुम् ।  
स्वप्नतुल्यं तुच्छवस्तुविलमोहिच्चु  
मत्तराय् बिन तत्त्वमेतुं अरीत्रीले ॥२॥

यह कैसी आश्चर्य की बात तथा विडंबना है कि हम यदि गौर से विचार कर देखें तो हम स्वप्नों के समान पिता, पुत्र, मित्र, धन आदि तुच्छ वस्तुओं में मोहित होकर, मस्त होकर, आपके तत्त्व को किंचित भी जान नहीं पाते।

इल्लात्ततोक्केयुं उण्टेन्नु बोधिच्चु  
वल्लाते सन्तापिच्चीटुन्नु कष्टम् ।  
कळ्ळच्चतिकळिल् राप्पकल् मत्तराय्  
कळ्ळमल्ले आहन्त पोक्कुन्नु ॥३॥





मैं सत्य कहता हूँ, जिनकी सत्ता ही नहीं है (अर्थात् स्वप्न की वस्तुओं के समान अनित्य) उन सारी वस्तुओं को सत्य मानते हुए हम दुःखी हो जाते हैं दिन रात इसी झूठ और कपट में ही मत्त होकर (संलग्न होकर) समय व्यर्थ गंवाते हैं। यह कितनी खेद की बात है।

इरेषु लोकवुं पाषाय माययिल्  
पारं विजृम्भिष्यु रज्जुविल् सर्पं पोल्।  
इत्य मोर्तास्थकळेल्लां त्यजिच्चेक—  
सत्य मारायुविन् नित्य निराकुलम् ॥४॥

यह चौदह भुवनों का विश्व समस्त, रस्सी में (भ्रम के कारण) सर्प की प्रतीति समान, असत्यरूप माया में ही प्रतिष्ठित होकर दिखाई देता है। इस बात को भलीभांति स्मरण कर, (इन तुच्छ वस्तुओं पर) आशाओं को छोड़कर उस एकमात्र सत्य का अनुसंधान करें तो सदा के लिये हमारी अशान्ति तथा व्याकुलता मिट जाएगी।

उच्चतिलल्लयो घोषिष्यु नित्यमां  
ओत्रेयुळ्ळु नानात्व मिल्लन्नु।  
मेच्चत्तिली मातृवाणि श्रीविक्कुवान्  
श्रोतमिल्लातेयाय् पोयतु मल्भुतम् ॥५॥

कितने उच्च स्वर में यह नित्य घोषित किया जाता है। (श्रुति, स्मृति और शास्त्रों में) कि वह एक ही है और जो नानात्व (विचित्रता) दिखाई दे रहा है वह असत्य (माया) है। इस श्रेष्ठ मातृवाणी को स्पष्ट सुनते हुए भी लोग अनसुनी कर देते हैं यह कितना आश्चर्य है!

ऊक्केषुं शत्रुक्कळ् कामवुं क्रोधवुं  
तक्कवुं पार्तुं पात्रारात् मरुवुन्नु।  
चिक्केन्नु इवट्टिण्टे कण्ठमरक्कान्  
पट्टिय वाळे एक सत्य बोधं तान् ॥६॥

काम और क्रोधरूपी दो प्रबल शत्रु (आक्रमण के) सही समय की प्रतीक्षा में हमारी निकट ही खड़े हैं। इनके गले को तुरंत काटने में समर्थ तलवार एकमात्र सत्य का ज्ञान ही है।

ऋत्विक् काकुन्न होमाग्नियिल् सर्व  
यज्ञ संभारड.ळाहुति चैय्युं पोल्।  
पञ्चेन्द्रियवृत्ति सर्ववुं ज्ञानाग्नि—  
यिङ्गल् स्वाहाकारमाय् वरट्टे सदा ॥ ७ ॥

जिस प्रकार ऋतिक लोग (यज्ञ के पुरोहित) यज्ञ के

लिये एकत्रित घी इत्यादि समस्त सामग्रियों को होमाग्नि में हवन करके भस्मसात कर देते हैं, वैसे ही हमारे पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तियों को भी पूर्णरूप से विशुद्धज्ञानरूपी अग्नि में सदा के लिये हवन कर लें।

एन्तिन्नु नीन्तिकुलजञ् बलयुन्नु  
संसारवारिधौ लोकरनेकधा।  
अन्तिकत्तल्लेयुरुक्कुन्नु श्रीपाद—  
पद्मनौका परं श्रेयः सुखावहा ॥८॥

क्यों लोग बार-बार (जन्म लेते हुए) इस संसारसमुद्र में तैरते हुए थक जाते हैं जब कि परमश्रेय तथा परमानन्द प्रदान करने वाले भगवान् के चरणकमलरूपी नौका हमारे पास ही तैयार खड़ी है?

एरियमोदेन केरुविन् तोणियिल्  
पारं सुखेन गमिच्चु सुखिक्कुविन्।  
श्रीकान्तसुन्दरं श्रीमन्मनोहरं  
श्रीवत्सविग्रहं ध्यानिच्चु कळ्ळुविन् ॥९॥

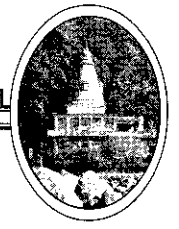
आइये, बड़े आनन्द के साथ इस नाव में चढ़ जाइये और आसानी से यात्रा करते हुए सुख का अनुभव कीजिये। उस सुन्दर लक्ष्मीपति के मनोहर श्रीवत्सांकित विग्रह का ध्यान कीजिये।

ऐहिकवस्तुविल एन्ति रिप्पू सुखम्  
दुःखमे दुःखमे दुःखमे दुःखमे।  
अन्तरङ्गति लिखिक्कु मात्मानन्द  
मन्तरं कूटाते उष्टु रमिक्कुविन् ॥१०॥

इस दुनिया की वस्तुओं में (जो अनित्य हैं) क्या सुख हो सकता है? इसमें तो केवल दुःख ही दुःख है। हमारे अंतःकरण में जो अविरत और अखंड आत्मानन्द उपस्थित है उसी का उपभोग करते हुए उसमें रमण करो।

ओटि अलयेण्ट अङ्गुमिङ्ग सुखं  
तेटि मनुजरे काट्टिलुं नाट्टिकुम्।  
ओटक्कुषल्विळि केळ्ळुन्न तिल्लयो  
आटि वरुवि नेन्नेण्टे समीपत्तिल् ॥११॥

हे संसार के मनुष्य! जंगलों में, शहरों में इधर-उधर



सुख की खोज में भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप लोगों ने उस वंशी की पुकार नहीं सुनी है कि 'भागकर मेरे पास (मेरी शरण में) आ जाइये'।

अमृत के निचोड़ का ही पान कर लीजिये और उनके नामों का जप करते हुए परम आनंद पा लीजिये।

औषध मोह कषिच्चेन पलतरं  
औषधं पट्टियतोन्नतन्ने द्दढम्।  
पादसेवामृत सारं कषिक्कुविन्  
नामं जपिक्कुविन् पारं सुखिक्कुविन्।।१२।।

अम्मयु मच्चनुं धान्यधनादियुं  
सन्मय चिन्मय नीये मम प्रभो।  
कल्मषमोक्केयुं पोक्किनिन् पादत्ति-  
लन्ते रमिक्कुवानेन्ते कनियान्तु ।।१३।।

इस संसाररूपी व्याधि के निवारण के लिये कई बार अनेक प्रकार की उपयुक्त दवाइयों का सेवन किया है। यह आश्चर्य की बात है कि एकमात्र भगवान् की चरणसेवारूपी

हे प्रभो, आप ही मेरे सच्चे पिता और आप ही माता हैं। आप ही धन धान्य इत्यादि मेरा सर्वस्व हैं। आप ही सत् के रूप हैं और ज्ञानमय हैं। आप मुझ पर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते जिससे कि मेरे सारे पाप मिट जाएं और अंत में मैं आपके चरण कमलों में ही रमण करूं?

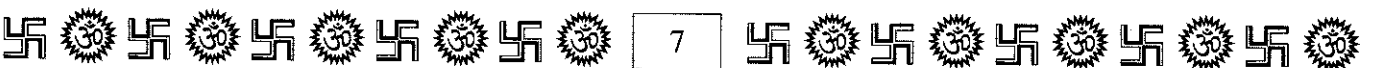
□□

## निर्गुण स्तोत्र

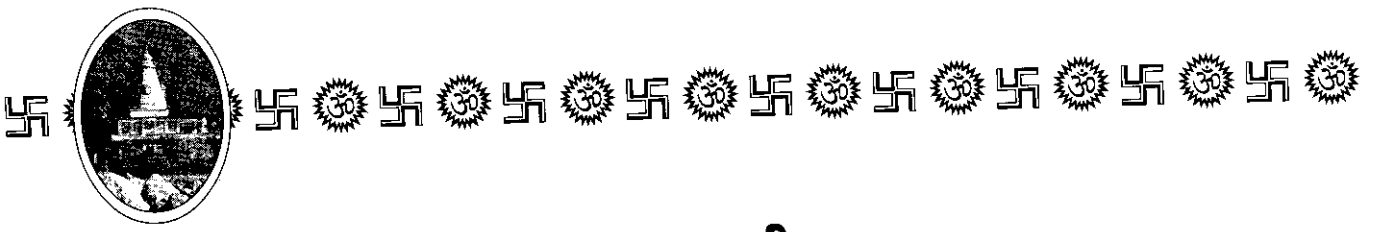
इसकी रचना श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी महाराज ने सन् 1929 के आसपास  
ब्रह्मपुरीस्थित गुहा में निवास के समय की थी

निर्गुणोऽहम् निष्कलोऽहम्, निर्ममोऽहम्, निश्चलः।  
नित्यशुद्धो, नित्यबुद्धो, निर्विकारो, निष्क्रियः।।१।।  
निर्मलोहम्, केवलोऽहम् एक एवाऽद्वितीयो।  
भासुरोऽहम्, भास्करोऽहम् नित्य तृप्तश्चिन्मयः।।२।।  
पूर्णकामः, पूर्णरूपः, पूर्णकालः पूर्णदिक्।  
आदिमध्यान्तहीनो जन्म मरण वर्जितः।।३।।  
सर्व कर्ता, सर्व भोक्ता, सर्वसाक्षी सोऽस्म्यहम्।  
सर्व व्यापी मद्द्वितीयो नास्तिकिंचन क्वापिऽहो।।४।।  
आनन्दोऽहम्, अनन्तोऽहम् सदरूपः चिदरसोऽप्यहम्।  
अहम् ब्रह्मास्मि ब्रह्मास्मि ब्रह्मोवाऽहम् सदाशिवः।।५।।

□□







## ज्ञान कुम्भी

श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज की  
मलयालम में मूल रचना का योगेश प्रवीन द्वारा हिन्दी काव्यानुवाद

नवल श्याम घन, कृपामूर्ति, प्रभु,  
सुगति प्रदायक, परमानन्द  
सद्गति लाभ, प्रयास हेतु, हे  
रे अमन्द, तू क्यों है मन्द,

क्षीर सिंधु, मां 'श्री' निवासिनी  
हृदय-हरण राधा चित्तचोर  
उनका शुभ सर्वांग ध्यान कर  
मान मोह मद छोड़, विभोर

मंत्र महान, महा औषधि है  
महापुरुष सेवा, वन्दन  
प्रभु पद श्रद्धा, चित्त शुद्धि है,  
भक्ति मुक्ति का अवलम्बन,

निर्मल मन, शैशव समान हो  
कालजयी हो, बुद्धि निःसंग  
विश्व विजित है, निश्छल प्राणी  
कर अविलम्ब ये जीवन रंग

तज दे, कूप मण्डूक ये जीवन  
मन मानस कर नीलाकाश  
सदा सुखी बन, रहे मगनमन  
हृदय में हो आनन्द प्रकाश

रूप, नाम, लीला हो कृष्णमय  
कर स्मरण हरे कृष्णा  
तन हो ब्रह्ममय, मन हो विष्णुमय  
मिट जाएगी, हर तृष्णा

जप ले, क्लेश नाशक नारायण  
भज ले, मोक्षप्रद मधुसूदन  
रहे अग्रसर आनंद पथ पर  
परम सत्य है, सद् चिन्तन

गुरु वाणी है, भक्ति अमोलक  
केशव प्रभु के चरण कमल  
ईश्वर आशा में रख, आशा  
प्राप्त स्वमहिमा ही प्रतिफल

छोड़ कपट जंजाल जाल सब  
भज प्राणी-योग क्षेम प्रदा  
कंस निकन्दन, पार्थ सारथी  
पास हैं तेरे पास, सदा

कोटि-युगों के पुण्यपुंज दल  
मानव जीवन कमल खिला  
जिन पाए सद्गुरु पद पंकरुज  
उन्हें भाग्य, ज्ञानामृत मिला

आत्म स्वरूप को खोज पथिक अब  
अन्तःकरण प्रकाशित हो  
सत्य ब्रह्म है, जगत है मिथ्या  
यही भाव मन प्रमुदित हो

झंझावात में अडिग रहे तू  
मंत्र 'तत्त्वमसि', अपना ले  
परम तत्व रख, ध्यान में प्यारे  
जग जीवन में विजय पा ले।

चित्त भ्रमित कर, जनम गंवाया  
दुख झेले, आंखें कर बन्द  
श्री गुरु कृपा ही पूर्ण प्राप्ति है  
सुखद शान्ति, निर्मल आनन्द।



## ईश्वर कारुण्यम् के कुछ मुख्य अंश

— स्वामी चैतन्यानन्द

वैसे तो गुरु महाराज की आत्मकथा अध्यात्म को समझने के लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी पुस्तक है, किन्तु



स्वामी चैतन्यानन्द जी

अध्यात्म के मार्ग को समझने के लिए गुरु महाराज द्वारा उद्बोधित इस पुस्तक में कुछ अंश यहाँ विशेष रूप से प्रस्तुत हैं।

### तपस्या स्थली की तलाश में

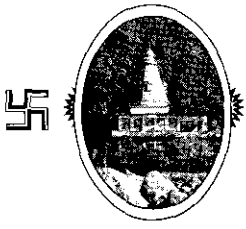
‘ईशावास्यमिदम् सर्वम्’ इस सत्य विचार का बीज मेरे मन में प्रस्फुटित होने लगा। सत्य के कारण जब इस प्रकार विचार संकल्पित होने लगता है तो प्रत्येक वस्तु में, पेड़-पौधों, लताओं में ईश्वर का वास दिखाई देता है ‘सर्वम्विष्णुमयम्’ और यह असंभव हो जाता है कि पेड़ से एक पत्ती भी तोड़ी जाये। थोड़ी देर तक मैं इस विचार से ओत-प्रोत बैठा रहा। ‘यह वो क्षण था, जहाँ से मैंने अपने अध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया’। I felt, I am standing for election to the Lords Parliament. (मैंने अनुभव किया कि भगवान दरबार में मैं चयनित होने के लिये खड़ा हूँ)। मैंने स्वामी शिवानन्द जी को अपनी वार्ता के दौरान सब बताया। (अध्याय-१३)

### गंगा और गुहा

‘गुहायाम् निहितम् तत्त्वम्’  
(गुहा में यह तत्त्व निहित है।)

तत्त्व (परम सत्य) गुहा (हृदय की गुहा अर्थात् हृदय के अन्दर) में छुपा है। यद्यपि यह वैदिक ऋचा विशेष रूप से हृदय की गुहा के लिये है तब भी बाहरी ‘पहाड़ की गुहा’ साधकों को स्वयं को समझने और अनुभव करने में काफी हद तक सहयोग करती है और इस वैदिक वाक्य पर ठीक उतरती है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है यह अक्षरशः सत्य है।

यह मन, कामादि (काम, क्रोध, मद, लोभ) के समुद्र में फंसकर ऊपर-नीचे होकर उस दुःखद स्थिति में ठीक एक उस जहाज की तरह है, जो एक भयंकर झंझावात में



फँसकर ऊपर—नीचे हो रहा है और समुद्र में डूबने जा रहा है। उस भयंकर दुःखद स्थिति में भी यदि आप गुहा के अन्दर प्रवेश करते हैं और अपने मन में सोचते हैं तो मन को उत्थल—पुथल करने वाले सारे विचार गायब हो जाते हैं जैसे सूर्य के निकलने से अंधकार। वह मन को विवश करता है कि आप यहाँ हमेशा के लिये रहे। लोग बाहर की दुनिया को भूल जाते हैं। मन पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तब हृदय के अन्दर से एक ही आवाज आती है—

धन्योहम्, धन्योहम् (ओह मैं निश्चय ही धन्य हूँ)

ठीक तब मुझे भर्तृहरि का सुन्दर श्लोक स्मरण हो आता है—

धन्योहम् गिरि कन्दरेषु वसताम्  
ज्योतिष्पदम् ध्यायताम् आनन्दाश्रुकणान्  
पिबन्ति शकुना निशंक मङ्केशयाः

जिनको भगवान का आशीर्वाद प्राप्त है वे पर्वतों की गुहा में बैठे रहते हैं और परम ज्योति का ध्यान करके परम आनन्द का अनुभव करता हैं। उन भाग्यशालियों की गोद में बैठे लेशमात्र भय से रहित पक्षी उनके आनन्द अश्रु का स्वाद लेते हैं।

विद्वान पाठक मुझे यहाँ गलत न समझें। मैं वह स्थिति नहीं प्राप्त कर पाया हूँ या उसके आसपास पहुँचा हूँ, किन्तु मैं यह जरा सा अन्दाज लगा सकता हूँ कि इस आनन्द से भरी स्थिति क्या हो सकती है।

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ स्थिरामतिः  
मतिलभ्ये सर्व ग्रन्थिनाम विप्रमोक्षः (छन्दोपनिषद्)

भोजन की शुद्धता में ही तत्व शुद्धि रहती है। तत्व शुद्धि में बुद्धि स्थिर रहती है। जब बुद्धि स्थिर रहती है, तो सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, यानि मोह और माया के बन्धन हमेशा के लिये टूट जाते हैं।

अब मैंने अयाचक वृत्ति स्वीकार की है (इस जीवन में

किसी से भी कोई चीज न माँगना, यहाँ तक कि खाना भी)।

‘योगक्षेम वहाम्यहम्’ मुझे भगवान के इस वचन में पूर्ण आस्था है। मुझे किसी से भी कोई चीज माँगने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई। मेरा अपना खर्च बहुत कम है किन्तु ब्रह्मचारी सन्यासी और गृहस्थ (जो तीर्थ यात्रा पर आते हैं) जो आते जाते हैं, से खर्च बढ़ता जाता है। यह सब कुछ सर्वशक्ति (भगवान) के द्वारा ही चलाया जा रहा है। (अध्याय— २३)

## ज्ञानोपदेश

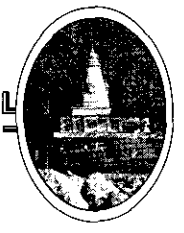
अनुमोदामहे ब्रह्माचर्यमेकान्त निर्मलम्।

धर्म्यम् यशस्यम् आयुष्यम् लोकद्वय रसायनम्॥

ब्रह्मचर्य जीवन इस लोक और परलोक में रसायन जैसा सुख और आरोग्य देता है। (ब्रह्मचारी का सीधा—सादा जीवन, कड़ी मेहनत का फल उस प्रकार है, जैसे कि शक्तिवर्धक आयुर्वेदिक रसायन, जीवन को नई शक्ति, प्रसन्नता और स्वास्थ्य दोनों ही जीवन में प्रदान करता है।)

इस सब के बाद भी मन कई अवसरों पर विषयाकुल होता था, किन्तु मैं कभी भी इन्द्रिय सुख भोगने वाले लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चला। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह सब भगवत् (परम ब्रह्म परमेश्वर) कृपा से हुआ। जब मैं १८ वर्ष का था, तब मुझे पक्षाघात का तीव्र आघात हुआ। नवरक्किजि और पिजिच्चिल का ५ बार लेप होता था। मैं घी, दूध और काषाय (काढ़ा) का सेवन प्रतिदिन करता था। क्या यह सब चीजें मेरी इन्द्रिय और लिंग को पुष्ट नहीं कर रहा था? यह आध्यात्मिक साहित्य जैसे भगवद् गीता और भागवत का ही प्रभाव है, जिसने शारीरिक सुख के लिए मुझे अपने मार्ग से भटकने नहीं दिया। इतना ही नहीं, छोटी उम्र से ही इन्द्रिय वासना और भगवान के प्रति वासना (अदम्य इच्छा, तीव्र कामना) में निरन्तर टकराव रहता था। मेरी आन्तरिक इच्छा थी कि ईश्वर के प्रति मेरी भक्ति प्रगाढ़ हो। भगवान के आशीर्वाद से, मेरी इस इच्छा एवं विचार ने मुझे सुरक्षित रखा।





मैं नियमित रूप से प्रार्थना करता एवं आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ता तथा ध्यान करता था। मैंने कभी भी प्रातः एवं सायंकाल का समय बिना प्रार्थना और ध्यान के नहीं बिताया। रेलगाड़ी में भी यात्रा करते समय मैं एक कोने में बिना किसी से बात किये शान्त बैठ जाता और अपनी प्रार्थना और ध्यान करता। यह मेरा स्वभाव बन गया था। मेरी सबसे बड़ी इच्छा थी कि मैं भगवान का सर्वप्रथम भक्त बनूँ, किन्तु अब मेरी इच्छा है, 'त्वत्भक्त भक्तन्टे भृत्य भावं कल्पिच्चालतुम-मति' (वह (भगवान) मुझे उनके सबसे बड़े भक्तों के भक्तों का सेवक बनने की अनुमति प्रदान करें)।  
अध्याय- ३१

### ज्ञानोपदेश और राम चरित मानस सत्ये न लभ्यस्तपसाहयेषात्मा सम्यक ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् 'श्रुति'

यदि कोई आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊंचा उठना चाहता है, तो उसमें ४ गुण अवश्य होने चाहिए। सत्यनिष्ठा, तपस्या, सम्यक ज्ञान (सत्यज्ञान) और ब्रह्मचर्य।

मेरे गुरु ने श्री तुलसीदास महाराज कृत "रामायणम् (राम चरित मानस) की बड़े जोरदार ढंग से प्रशंसा की है। उन्हें कालीदास की उपमा से अलंकृत किया है। तुलसीदास महाराज जी स्वयं अतुलनीय, महान और उच्च कोटि के विद्वान संत और कवि थे। मैं नीचे एक-दो उदाहरण दे रहा हूँ।

**राम नाम मनिदीप धरू, जीह देहरी द्वार।  
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जाँ चाहसि उजिआर।।**

यदि किसी दीप को द्वार की चौखट पर रख दिया जाय तो वह बाहर और भीतर (अन्दर) दोनों ही जगह प्रकाश करता है। शरीर का द्वार मुख है। यदि कोई प्रकाश का दीपक यहाँ रख दे तो बाहर और भीतर दोनों ही प्रकाशित होंगे। यह प्रकाश का दीपक- राम नाम हैं। राम नाम जपते रहिये बाहर और भीतर दोनों प्रकाशित होंगे। आपके ज्ञान का प्रकाश फैलेगा- निश्चय ही ज्ञान की चमक

दिखाई देगी।

**सखा धर्म मय अस रथ जाकें।  
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।**

हे सखा! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ होगा, उसे अपने शत्रु को हराने में क्या कठिनाई हो सकती है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति के दुश्मन कैसे हो सकते हैं।

तुलसी दास महाराज का बहुत दृढ़ मत यह है कि कोई भी सत्कर्म करे, किन्तु पूर्ण निष्ठा और निष्कपट भाव से करे।

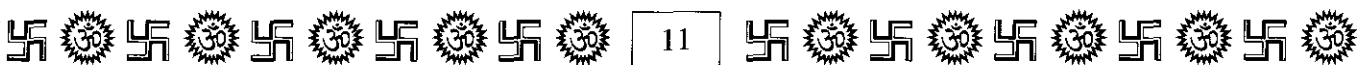
### मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा

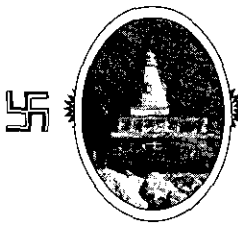
मन, कर्म और वचन से (मनसा, वाचा, कर्मणा) पूर्ण अनुशासन के साथ सेवा और पूजा करनी चाहिए। उसमें मन, वाणी और कर्म सब एक ही लय और ताल में हों (उसमें कोई अन्तर न हो)। मनस्येकम् वचस्येकम् कर्मण्येकम् महात्मनाम। बड़े और सज्जन लोगों के कर्मों में निरन्तरता होती है और विचार, वाणी और कर्म में सत्यता होती है। निष्ठाहीनता और दिखावा नाश के कारण होते हैं। मैंने भी कोशिश की कि मैं अपने जीवन से निष्ठाहीनता को समाप्त करूँ।

**कैतवम् विद्वभजिक्कुन वक्कुल्ल  
योगवुम् क्षेमवुम् पूर्ति चैयवान  
कमसारियाकुन्न पार्थन्डे सारथि  
सर्वदा एट्टमडुत्तिरूपू**

(अर्थ-पूर्ण योग होना, यानि उस सब वस्तुओं को प्राप्त करना जो उसके अभी तक पास नहीं है और क्षेम यानि जो उसके पास है उसकी सुरक्षा, जो उस परमेश्वर की सेवा पूर्ण निष्ठा और बिना किसी दिखावे के करता है। भगवान कृष्ण (पार्थ सारथी) जो काम को समाप्त करने वाले हैं। उसके हमेशा साथ रहते हैं। जिस प्रकार उन्होंने अर्जुन का रथ हांका था और उसके मन के सारे भ्रम को समाप्त कर दिया था उसी प्रकार उसको भी मार्ग दिखाते हैं। (अध्याय- ३२)

□□





## महासमाधि

— स्वामी चैतन्यानन्द

### महाप्रयाण की भूमिका

यह सन् १९६१ की बात है। उतरते जाड़े की ऋतु थी लेकिन वर्षा के कारण जनवरी के अन्तिम सप्ताह से ठण्ड बढ़ गई थी। मेरे विचार से उस दिन फरवरी १९६१ की पहली तारीख थी। भयानक वर्षा हो रही थी और ओले पड़ रहे थे। दस बजे दिन का समय रहा



स्वामी चैतन्यानन्द जी

होगा पूज्य श्री गुरु महाराज जी ने अनन्त कृष्ण जी से कहा कि 'आत्मचैतन्य को फुरसत हो जाय तो मेरे पास आ जाय।'

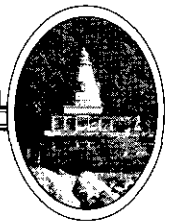
उस समय तक मैंने स्नान नहीं किया था। मैंने उसी वारिद जल और हिमफलों से स्नान किया फिर गुरु महाराज जी के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। गुरु महाराज ने मुझसे पूछा कि 'क्या, जाने की तैयारी है?' महाराज जी के इस वाक्य में बड़ा रहस्य छिपा हुआ था। मैं कुछ समय तक चुप रहा लेकिन उनके फिर कहने पर मेरे मन की जो बात थी मैंने उसे कह दिया। वे हमेशा के लिए जाने की बात कह रहे थे। गुरु महाराज और लोगों को बुलाकर भी यही बात पूछते थे। मुझे एक सिद्ध महात्मा द्वारा बतायी गयी यह बात पहले से ही ज्ञात थी कि गुरु महाराज अपनी इच्छा के अनुसार ही अपनी काया का परित्याग कर सकते हैं।

### गोपेशानन्द जी पर कृपा

बात में बातचीत का विषय बदल गया लेकिन इसमें कुछ सन्देह नहीं कि गुरु-गमन की यही पहली भूमिका थी। इस तरह तीन चार दिन और बीत गये ७ फरवरी की रात को मैं, गोपेशानन्द जी और अनन्त कृष्ण जी साथ-साथ थे। अनन्त कृष्ण जी सो चुके थे मैं गोपेशानन्द जी को योगवशिष्ट विशेषांक पढ़कर सुनाता रहा। जब रात के नौ बज गए और ठण्डक काफी बढ़ गई तो हम लोग भी सर्दी में कम्बल डालकर लेट गये थे। अभी आँख लगी भी नहीं थी कि एक आवाज आयी। उधर देखा तो गोपेशानन्द स्वामी जी उठ बैठे थे। देखते ही देखते वे एकाएक गिर गये, उनका श्वास अवरुद्ध हो गया और आँखें खुली रहीं। अनन्त कृष्ण जी भी इस बीच उठकर आ गये। हम लोग पीठ में मालिश करते रहे, किसी तरह उनकी साँस लौटी लेकिन साथ ही साथ खून की उल्टी भी शुरू हो गयी। हम लोग उन्हें गुफा के बाहर लाए और छाते के सहारे उन्हें बिठलाया। उस समय उन्हें उल्टी और टट्टी दोनों होने लगीं। सब खून ही खून था। अब वे लेट भी नहीं सकते थे। इसी दशा में जब रात के ग्यारह बज गए तो हम लोगों ने सेवानन्द स्वामी जी से जिज्ञासा की कि 'क्या गुरु महाराज जी से कह दिया जाय' इस समय गुरु महाराज समाधि के रूप में सोए हुए थे। निकट जाने पर महाराज जी ने पूछा 'कौन है' मैंने सब बातें कह दीं तब उन्होंने कहा 'यह विभूति ले जाओ उसको दे दो और कह देना कि हमने दिया है।'

हम विभूति लेकर आए थे कि गुरु महाराज ने ताली बजाकर हमें बुलाया और कहा कि 'हम भी आ रहे हैं।' इसके बाद महाराज जी नीचे आ गये और कुर्सी पर बैठ गये। हम लोगों से चूल्हे की राख मंगवायी। जब हम लोग राख लेकर आये तो सबसे कहा 'दूर जाओ।' गुरु महाराज ने गोपेशानन्द जी से उनके पूरे शरीर में राख लगवा दी। फिर स्वयं हाथ पकड़ कर जप करते रहे। गुरु महाराज जी की गद्दी के नीचे से एक कम्बल लेकर उन पर डाल दिया गया। बस एकाएक गोपेशानन्द जी को बिल्कुल आराम हो





गया और जब वे चैन के साथ सो गये तो गुरु महाराज भी अपने कमरे में चले गये। तीन बजे के लगभग गोपेशानन्द जी ने जब पानी माँगा तो मैंने कहा कि 'आप तो ठीक हो गये लेकिन अब गुरु महाराज को क्या होगा यह पता नहीं।' बाद में, पानी दे दिया।

## देह त्याग का उपक्रम

सात तारीख की रात नौ बजे गुरु महाराज ने कालबेल दबायी जिसकी आवाज सुनकर स्वामी मनीषानन्द जी (मनोरंजन) भागकर पहुँचे। महाराज जी ने बड़ियारा पानी माँगा। उस समय

गुरु महाराज के गिलास, कटोरी आदि गुफा में थे। उन्होंने वापस आकर मुझसे कहा कि महाराज जी बड़ियारा पानी माँग रहे हैं। मैंने उनसे पूछा, 'क्या आप ले जायेंगे?' वे खुशी से पानी लेकर गये तो महाराज जी ने 'क्या? क्या?' शब्द कहे एवं उनका हाथ पकड़ कर गुफा के



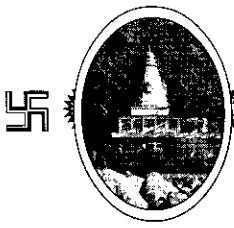
समाधि स्थल (जून १९६०)

पास आए। फिर स्वामी सेवानन्द जी से पूछा। अब तक हम सभी लोग उनके पास आ गये थे। मुझसे कहा 'दूर्वा और गंगाजल लाओ मैं शरीर छोड़ने जा रहा हूँ।' मैं बड़े बेमन से दूर्वा लाने को तैयार हुआ क्योंकि गुरु महाराज शरीर छोड़ने को तैयार थे। मुझे ये अच्छी तरह मालूम था कि वे अपनी इच्छा के अनुसार ही अपना शरीर छोड़ेंगे। साथ ही उन्होंने ये भी कहा कि जो रजाई ओढ़े हुए है उसमें ही उनका शरीर गंगा जी को सौंपा जाये। अनन्त कृष्ण जी से उन्होंने कागज और पेन माँगा। मैंने महाराज जी के कमरे से गंगाजल लाकर दे दिया जिसे उन्होंने दो तीन चम्मच पिया मुझसे विष्णु सहस्र नाम का पाठ करने के लिए कहा। मैंने अभी

बीस श्लोक ही पढ़े थे कि मुझे रोककर कहा, 'सो जाओ।' मैं गुफा में आकर बैठा रहा उस समय गुरु महाराज गद्दी पर बैठे हुए थे। स्वामी सेवानन्द, जी नीचे बैठे थे उनके ही द्वारा मुझको फिर बुलवाया। मैं उनके पास जाकर खड़ा हो गया। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर अपने सीने से लगाकर कहा 'विष्णु सहस्रनाम का पाठ करो।' मैंने पूरा विष्णु सहस्र नाम पाठ पढ़ा। मुझसे बोले, 'देखा कितना अच्छा हुआ' बाद में, मैं पूरी रात चूल्हे की आग के पास बैठा रहा एवं महाराज जी गद्दी पर बैठे रहे। सुबह प्रतिदिन की भाँति

स्नानादि करके वे ध्यान में बैठ गये। उस दिन ठीक रहे। उसी दिन कोई विदेशी महिला एक हफ्ते के लिए आयी थी। नौ तारीख को गुरु महाराज सुबह स्नान करके ध्यान में बैठ गये। कुछ समय बाद मैं गुरु महाराज को देखने के लिये गया तो देखा कि उत्तर की तरफ सिर करके वे लेटे हुए हैं। मुझे देखकर उन्होंने पूछा

'क्या बात है?' मैंने पूछा, 'क्या अँगीठी में थोड़ा अंगार ले आऊँ?' तो मुझे मना किया। इतने में वह महिला जो वहाँ से जा रही थी, उसको बुलाया। मैं अभी नीचे उतरा ही था कि गुरु महाराज ने कालबेल बजायी और सभी लोग भागकर आ गये। गुरु महाराज किसी का हाथ पकड़ कर नीचे आये और शौच गये। मैंने गुरु महाराज जी से प्रार्थना की कि उस महिला को भेज दिया जाय ताकि उन्हें शौचादि जाने में कोई बाधा न हो। उस महिला ने जाने से मना किया। और बाद में, अनन्त कृष्ण जी के साथ उसे ऊपर बद्दीनाथ मार्ग पर भेजा गया। उस समय लगता था कि गुरु महाराज को कुछ बेचैनी थी क्योंकि वे बार-बार करवटें ले रहे थे। हम लोगों



ने एक आदमी को ऋषिकेश भेजकर डॉ. माथुर को बुलवाया। उन्होंने आकर गुरु महाराज को देखा और कैप्सूल वगैरह दिया। डाक्टर साहब को छोड़ने के लिये अनन्तकृष्ण जी ऊपर गये। महाराज जी से आग्रह किया गया कि वे दवाई खायें लेकिन उन्होंने मना कर दिया। अधिक कहने पर बोले, 'क्या उलट देने के लिए ही दवाई मुँह में डालें?' उसी समय महाराज जी ने गोली उल्टी से निकाल दी। अब फिर जल्दी ही डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने आकर कोरामिन दिया और कहा कोई बात नहीं, ठीक हो जायेगा। ऐसा कहकर वे चले गये। श्री प्रतापनारायण जी को गुरु महाराज जी ने तार भेजा था। वे १० तारीख को आ गये। उनसे कुछ बातें कीं। आने के बाद श्री प्रताप नारायण जी दो डाक्टरों को ले आये। पहले दिन गुरु महाराज ने डॉ. बुलाने को मना कर दिया था। इसके अलावा किसी से बीमारी की बात कहने के लिए भी मना कर दिया था। १० तारीख की शाम कई बातें मुझसे की जो केवल अनुभव गम्य हैं और उनमें से कुछ बातें पहले से ही उद्धृत हैं। मैंने गुरु महाराज से कहा कि कृष्ण ब्रह्मचारी शिवरात्रि में आयेंगे और सुना है कि वे आप से संन्यास लेने हेतु आ रहे हैं। आप कृपा करके उन्हें संन्यास न दें क्योंकि ठण्डक बहुत पड़ रही है और आपका शरीर ठीक नहीं है।

वे बोले 'कौन दे रहा है? उनको यहाँ से जाना नहीं चाहिए था।' इसी बीच कृष्ण ब्रह्मचारी वहाँ आ गये। गुरु महाराज ने मुझसे कहा 'जो हमने कहा है कह दो' हमने कहा गुरुमहाराज ने अभी-अभी कहा है कि आपको यहाँ से जाना नहीं चाहिए था। फिर ये भी बताया कि गुरु महाराज का शरीर ठीक नहीं है। गुरु महाराज ने उनसे पूछा 'भोजन हो गया' उन्होंने जवाब दिया 'अभी नहीं।' 'तो, जाकर खाना खाओ।'

फिर बातें होती रहीं। एक अमेरिकन स्टीफन उन दिनों वहाँ था। उसने कहा हेलीकाप्टर लाकर गुरु महाराज को बाहर कहीं ले जाऊँगा। मैंने ये बात भी महाराज जी से कही, 'आप चाहें तो जायें।' जवाब में चारों तरफ देखा और कहा, 'ऐसा भजन का स्थान कहाँ मिलेगा।'

११ तारीख को एकादशी थी उस दिन भी स्नानादि करके बैठ गये थे। उस समय गुरु महाराज के पास कोई

न कोई अवश्य रहता था। सुबह ८ बजे सबसे पूछा 'क्या गंगा जी जाकर हाथ पैर धोकर आये हो?' सबने कहा 'हाँ।' महाराज जी ने कहा 'सब पद्मासन (सीधे) में बैठो। आपस में एक दूसरे को छूना नहीं। सब बैठ गये। एक छोटे से कमरे में आठ दस आदमी थे। सेवानन्द स्वामी जी ने कहा 'हम खड़े रहेंगे।' उनको भी बैठा दिया। उसके बाद गुरु महाराज ने अन्तिम उपदेश दिये। बोलते-बोलते महाराज जी गद्गद् हो उठते थे। उस समय उस कमरे में प्रेम की तरंगे चल रही थीं। सबको पात्र भेद के अनुसार अपना-अपना अनुभव हो रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सभी लोग छककर अमृत पान कर रहे हैं। हृदय आनन्द से भर गया था। उसके बाद सबको बुलाकर आशीर्वाद दिया। सारा ममत्व वहीं तक सीमित था। जो भी बाँटना था, बाँट दिया। उसके बाद किसी को पहचानते हुए वे प्रतीत नहीं हो रहे थे। १२ तारीख को तीन डाक्टर लाये गये उनको प्रसाद स्वरूप "स्पिरिचुअल टॉक" आदि पुस्तकें देकर उनको वापस भेज दिया गया।

## महाशिवरात्रि (निर्वाण)

१२ या १३ तारीख को कई लोगों को पत्र भेजे थे। १३ तारीख महाशिवरात्रि के दिन गुरु महाराज स्नानादि करके ध्यान के बाद कमरे के बाहर तखत पर बैठ गये। मुझसे पूछा, 'आज क्या बनाओगे?' मैंने कहा, 'कुछ नहीं, अगर आप खायेंगे तो बनाऊँगा।' 'हम खायेंगे' गुरु महाराज ने ऐसा कहा।

बाद में, गीता का आठवाँ अध्याय एवं दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के लिए मुझसे कहा। ग्यारहवें अध्याय के कुछ मन्त्र ही पढ़े थे कि मैं रोने लगा। बाद में गुरु महाराज अपने हाथों में किताब लेकर बैठे और अध्याय पूरा हुआ।

मैं खीर, खिचड़ी आदि गुरु महाराज के पास ले गया। चम्मच लेकर ऊपर डालने को संकेत किया और कहा ले जाओ। कुछ भी नहीं खाया। लगभग शाम को पाँच बजे तक बाहर ही रहे। इतने में बादल आ गए और छीटें पड़ना शुरू हो गईं। हमने छाता उठाया।

गुरु महाराज बोले वर्षा नहीं होगी और कुछ ही समय में सारे बादल छँट गये। गुरु महाराज अपने आप उठकर कमरे में चले गये।





पाँच बजे गुरु महाराज को नींद की एक गोली दी गई तब भी प्रतापनारायण जी ने कहा अगर नींद न आई तो चार घण्टे बाद एक गोली और देना चाहिये। करीब साढ़े आठ बजे मुझसे कहा, 'तुम दूध लाते हो तो बहुत ही अच्छा लगता है' मेरी कुछ समझ में नहीं आया। मैंने कहा, 'मैंने नहीं तैयार किया है मनीषानन्द जी ने बनाया है।' तो गुरु महाराज ने उसी बात को फिर दुहराया। तब कालिकानन्द स्वामी जी ने कहा, तुम्हारे लाने के समय अच्छा लगता है। हमने दूध लेकर एक पाव दूध में हारलिक्स मिलाकर दे दिया। वो करीब तीन छटांक दूध उनका आखिरी दुग्धपान था। उस समय तक नौ बज गये थे। गुरु महाराज से मैंने सोने की एक गोली खाने के लिए कहा तो उन्होंने कहा, 'मैं सो चुका।' और फिर, मैं कुछ नहीं बोला। गुरु महाराज ने कहा, 'अब हमेशा के लिए सोने जा रहा हूँ। लाओ जल्दी दे दो' इसके साथ ही मुँह खोला। मैंने नींद की एक गोली मुँह में डाल दी। पानी में दो बूँद कोरामिन डालकर पिला दिया। उसी दिन कहा कि 'कमरे में कोई न रहे हम ठीक हैं। पाँच बजे पानी लेकर आना।' हम लोग नहीं माने और कुछ लोग वहीं रहे। मेरी बारी पहले थी। कुछ काम के कारण पुरहरानन्द जी को आने में कुछ देर लग गई उनकी जगह

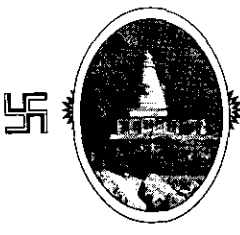
पर कालिकानन्द जी मेरे साथ थे। कुछ समय पहले ही सेवानन्द स्वामी जी जाकर सोए थे। कृष्ण ब्रह्मचारी बाहर अँगीठी जलाकर बैठे थे। मैं विष्णु सहस्रत्र नाम का जप कर रहा था। कालिकानन्द जी श्री बद्रीनाथ जी का नाम बार-बार लेते थे। इसी बीच रात को १० बजकर ५० मिनट पर कण्ठगत मुदु प्रणव ध्वनि सुनायी दी। ज्योति ज्योति में लीन हो गयी। मैंने उसी समय कालबेल बजायी। सभी लोग आ गये। मैंने कमरे से बाहर आकर श्री प्रताप नारायण आदि को बुलाया। उसी क्षण भूमिकम्प भी हो गया था। मैं रो रहा था। मुझे लोगों ने बाहर निकाला कि कुछ समय के लिए गुरु महाराज समाधि में हैं। बाद में गीता पाठ होता रहा। रात को ही १८ तार लिखकर सब स्टेट में भेजे गये। मैं उसके बाद बराबर विष्णु सहस्रत्र नाम का पाठ करता रहा। लोगों से कुछ कहने के लिए महाराज जी मना कर गये थे और जिससे कहना था उससे वे पहले ही कह चुके थे। मुकुन्द राम जी, बंगाली माता जी, स्वामी सुभद्रानन्द आदि सबसे एक माह पूर्व ही गुरु महाराज अपनी अन्तिम यात्रा की सूचना दे चुके थे। और फिर, उनका पार्थिव शरीर १४ फरवरी सन् १९६१ दिन मंगलवार को सायंकाल लगभग ४ बजे उनकी ही आज्ञा के अनुसार सुरसरिता में प्रवाहित कर दिया गया।

□□



गुहा के प्रवेश द्वार पर महाराज जी की गद्दी के सम्मुख पूजा स्थल





## पुरुषोत्तम-गाथा

— स्वामी बालानन्द

(पुरुषोत्तम-गाथा अथवा सदगुरु-प्रसाद ग्रन्थ का समर्पण स्वामी बालानन्द जी द्वारा दिनांक १ अप्रैल, १९४६ को वशिष्ठ गुहा में किया गया। इसी पुस्तक के कुछ अंश इस लेख में दिये गये हैं। लेख में स्वामी जी ने स्वयं को बाल के नाम से सम्बोधित किया है)।

मैं पहले पहले ही गुरु-देव के पास आया था, मेरे साथ एक जिज्ञासु और थे। मेरी अवस्था अति शोचनीय थी। यह दस-वर्ष पूर्व की बात है उस समय मेरी आयु लगभग पचीस वर्ष की रही होगी। सेतु-बन्ध-रामेश्वर से हरिद्वार तक पथ-प्रदर्शक गुरुदेव की तलाश में यथाशक्ति उद्योग भी किया, परन्तु किसी न किसी प्रतिबन्ध से कहीं भी मन स्थिर न हुआ। गत कुम्भ-मेले में मैं हरिद्वार पहुँचा। वहाँ भी अनेक महापुरुषों से परिचय हुआ मगर चित्त को यथोचित शान्ति प्राप्त नहीं हुई। निराशा से दिल कम्पायमान हुआ करता था। अच्छे-अच्छे भोग पदार्थ भी नीरस और कड़ुवे जँचते। सांसारिक दुखों का मूर्तरूप मुंह बाये सामने खड़ा रहता था। आहार व्यवहार, भाषण, विनोदियों से नितान्त उदासीन था। निर्जन-प्रदेश में अकेले रोते रहना मेरा स्वभाव सा बन गया था। बार-बार मेरी दीनता नयन-जल-रूप से बह जाती थी अनेकों प्रेमी-स्वजनों को त्याग कर ईश्वर-प्राप्ति के लिये किया हुआ यह त्याग मुझे अति संतप्त करने लगा यद्यपि पूर्ण-वैराग्य से दुख का कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु मैं दुविधा के दलदल में फँस सा गया, जिधर देखू अन्धेरा ही अन्धेरा दिखता। चलते-चलते भूख-प्यास सहते हुये प्रायेण शरीर व्याधियों और मन आधियों का घर हो गया। जिस प्रकार कोयला तेल आदि से बिगड़ी गाड़ी का चलना असम्भव हो जाता है उसी प्रकार नीहार रहने से सभी इन्द्रिय दुर्बल होने लगीं तथा शरीर रक्षा का भार पहाड़ सा मालूम होने लगा। निवास स्थान की समस्या तथा योग क्षेम की चिन्ता सदा लगी रहती है। हरिद्वार के इस विशाल मेले का प्रभाव मेरे शांत व हीन हृदय

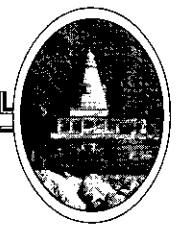


श्री स्वामी बालानन्द जी

पर न हो सका। एक-एक दिन युगवत् होकर मानो मेरी परीक्षा ले रहा था। वह दशा वर्णनीय न होकर केवल अनुभव से जानी जा सकती है। जिस शान्ति-देवता की खोज में इस दशा को पहुँचा वे भी अब और अधिक दूर छूट गये। रोने के अतिरिक्त और कोई चारा मेरे हाथ न रहा था। मेरी दीन-दशा पर कोई सहानुभूति दिखाता तो कई उपहास भी करते। कोई पढ़ने कोई भ्रमण करने अथवा सेवा करने, काम करने या मंडलियों में शामिल होने का उपदेश करते। परन्तु मैं हँ या ना कुछ भी निश्चयात्मकरूप से नहीं कहता था। बीच एक दिन एक भाई ने ऋषिकेश चलने की प्रेरणा दी। ठीक दूसरे दिन हम दोनों पैदल ऋषिकेश पहुँच गये और एक तरुवर के नीचे आसन जमाया। परन्तु हृदय-तंत्री दीन-हीन अवस्था को पहुँच चुकी थी। इस पुराण-प्रसिद्ध तपोभूमि ने भी अभीष्ट शान्ति न दी। दुःख से दिन निकल जाता था। इसके अनन्तर एक परोपकारी महात्मा हमारे पास आते ही बोले— भाई तुम यहाँ क्यों रहते हो, श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज के पास जाओ। वे एक बहुत अच्छे योग निष्ठ

महात्मा हैं, वशिष्ठ-गुफा में रहते हैं। अस्तु दूसरे दिन हम दोनों गुफा में पहुँचे। रात्रि का आरंभ समय था, कुछ वन कुसमों के लिए हम दोनों श्री चरणों में नतमस्तक हुये। पिता जी बड़े प्रेम से मिले। भोजन के उपरान्त हमने अपनी अर्जी दे दी। वह थोड़ी देर में बोले "तुम लोग कल सवेरे खाना खाकर ऋषिकेश को रवाना हो जाओ तथा वहीं रहकर भजन-वन्दन किया करो" मेरे मन को बहुत कष्ट सा हो गया। प्रातःकाल एक बार मैंने पुनः अपनी इच्छा प्रकट की, परन्तु स्वामी जी ने अपना निश्चय न बदला। साथी ने कहा भाई भाग्यहीनों पर कौन कृपा करेगा। तब मैं अपने कर्म-दोष





को रोया, अपने आप को धिक्कारता रहा, मैंने किसी का खण्डन-मण्डन निरूपण नहीं किया। मैं असावधान था। निराश होकर कहने लगा हे विधाता! इस प्रकार भाग्यहीनों की सृष्टि करने से तेरा कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता था। अहो? महापुरुष की दया भी भाग्य से ही मिलती है। नित्य-प्रति की तरह स्वामी जी स्नानादि से निवृत्त होकर गुफा का कपाट बंद कर ध्यान मग्न हो गये। मानों कपाट के साथ ही आशा-द्वार भी बंद हो गया। निराश हो गंगा-किनारे पहुँच स्नान कर एक शिला-खण्ड पर बैठ गया। सामने ही गिरिशिखर पर बाल-भानु ने भी दर्शन दिया। गंगा मैया भी अपने सरस अलाप से मन्द मन्द बह रहीं थीं। उन्होंने भी प्रकट रूप से मुझे कोई आश्वासन नहीं दिया। नेत्रों से अश्व बह रहे थे कण्ठ गद्गद हो चला था। निराशा ने भी सुअवसर समझ गंगा मैया की गोद में समा जाने की प्रेरणा दी। तब अत्यन्त वेदना



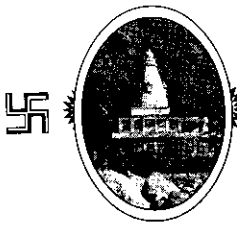
अनुभव करता हुआ गंगा मैया से प्रार्थना करने लगा कि माँ-अशरण की एकमात्र शरण तुम्हीं हो। मैं दीन-हीन किससे अपना दुखड़ा रोऊँ। मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर अपनी प्रशान्त-गोद में मुझे भी छिपा लो। मैंने सोचा गंगा में अपना शरीर छोड़ने से पापों का उचित पुरस्कार मिलेगा। अतः अपने अनेक कुकर्मों को स्मरण करते हुये पश्चाताप करने लगा तथा क्षमा मांगने लगा। जीवन यात्रा समाप्त ही होने वाली थी तभी 'स्वामी स्वामी' कहते हुए एक ब्रह्मचारी दौड़ते हुये आ पहुँचे। मैं कुछ परिवर्तित सा हो गया। वे सहसा बोल उठे 'महाराज आपको बुला रहे हैं, आइये' मैं साथ हो लिया। सहृदयता तथा करुणा महायोगियों का एक लक्षण है। दया-मूर्ति प्रत्यक्ष भगवान् गुरु-देव प्रसन्न और वरदायी हो चले थे। दुखियों को यदि परोपकारी महात्मा लोग भी आश्रय न दें तो उनको संसार में और ठिकाना बाकी क्या रह जाता है? वे प्रेम से मुझे दीक्षा देने लगे और मेरा आशा रवि भी उदयाकाश रंजित करता हुआ उदय होने लगा। इस महान उपकार से उन्नत नहीं हो सकता। धन्य है प्रभो! आपकी अनाथाश्रय-तत्परता को।

इसके अनन्तर उस दिन मैं ऋषिकेश को वापस हो गया तथा श्री गुरु-देव की आज्ञानुसार एक महीने पश्चात् पुनः उनके पास आकर रहने लगा। एक दिन महाराज ने मुझे जंगल से पत्ते लाने की आज्ञा दी। मैं तत्काल ही पत्ते लेने चला गया, परन्तु व्याघ्रादि वन-जन्तुओं का भय मुझे सताने लगा तथा भयभीत सा हुआ मैं इधर-उधर देख रहा था। इतने में क्या देखता हूँ कि थोड़ी दूर ऊपर स्वयं स्वामी जी लाठी लिये हुए टहल रहे हैं। मेरा सारा भय रात्रि की तरह लुप्त हो गया। पत्ते लेकर जब मैं आश्रम में वापस आया तथा आते ही दूसरे ब्रह्मचारी से मैंने पूछा स्वामी जी ऊपर कहाँ गये। उन्होंने कहा स्वामी जी तो अन्दर हैं वे कहीं नहीं गये। तब मैंने अपने मन में सोचा कि महापुरुषों की लीला अत्यद्भुत है, बाल के निर्बल हृदय स्थित भय का निवारण करने के लिये ही वंध्य-बापू ने यह लीला दिखाई। धन्य है भगवन् आपकी आश्रित-परायणता को।



चतुर्मास की समय था। मैं गंगा की दूसरी गुफा में था कि अचानक अकल्पित जल-प्रलय सा होने लगा। मैं स्वामी जी के पास पहुँचा ही था कि गंगा-माता विराट-रूप धारण करने लगीं, और देखते-देखते चारों ओर जल ही जल दिखाई देने लगा। गुफा के मार्ग बन्द हो गये मेरे सभी समान यथा जल-पात्र, माला, पुस्तक आदि उसी गुफा में रह गये। मेरे लिए वहाँ पहुँचना कल्पनातीत था। मुझे स्वाध्याय आदि नित्य-कर्मों की चिन्ता सताने लगी। पूज्य गुरु-देव मेरे भाव को जानते हुये बोले 'कहो बाल! आज क्या करोगे?' मैं निरुत्तर था। तदन्तर मैं किसी सेवा में लग गया। थोड़ी देर में महाराज बाहर गये फिर आकर सारे सामान हँस-हँस कर मुझे देने लगे। समय की भीषणता देखकर हमें एकाएक विश्वास न हुआ। उसमें भी गुरु-देव के वस्त्र पूर्ववत् सूखे हुये थे। यह हम को अभी भी एक समस्या है। धन्य है गुरुवर आपकी लीला को।





पिछले साल की बात है आश्रम में श्रीमद्भागवत् का सप्ताह परायण हो रहा था। एक दिन सभी शिष्य-गण घास काटना भूल गये। बहुत से लोग थे, सभी आहारादि से निवृत्त होकर भ्रमण करने इधर-उधर निकल गये। मैं ज्वर-ग्रस्त होने से विवश था, विवशता में सेवाकार्य का न होना स्वाभाविक था। उस समय मैं रोग-शय्या शायी था। स्वामी जी सभी ढंग देखकर किसी को आज्ञा न देते हुये स्वयम् दरांती लेकर घास काटने चल दिये। महापुरुषों का यही नियम बड़ा विचित्र होता है। वे काम कराने वाले तथा करने वाले समयानुसार स्वयम् बनते रहते हैं। अर्जुन भगवान का दास था तब वे अर्जुन के सारथी क्यों बने। स्पष्ट है जैसे भगवान् भक्त-वत्सल होते हैं भक्त भी उसी प्रकार भगद्वत्सल होते हैं यह नियम अटल व प्राकृतिक है। श्री गुरु-देव की भी यही चेष्टा मैंने देखी, तथा मैं भी येन-केन प्रकारेण साथ हो लिया तथा स्वामी जी को वापस करने के लिये अनेकों प्रयत्न तथा प्रार्थनायें की, परन्तु वे तो अत्युत्साह से ऊपर चढ़े चले जा रहे थे। मेरी बात न मानी, बल्कि मुझे ही यूँ कहने लगे कि तुम बीमार हो आराम करो। मैं शीघ्र ही घास लेकर आता हूँ और किसी से कुछ न कहना। परन्तु मैं भी नहीं माना। निदान, हमने मिलजुल कर घास काटी, और मैं घास का गूठा लेकर आश्रम में पहुँचा। जब यह घटना प्रकट हुई तो सभी पश्चाताप करने लगे तथा लज्जित हुये। धन्य है गोमाता जिसकी सेवा करने को आत्मारज मुनि लोग भी अहोभाग्य समझते हैं।



गुरु-देव हमें बुद्धिपूर्वक कर्म करने की आज्ञा देते हैं, तथा योग कर्मसु कौशलम्, ऐसे परमार्थ को प्रयोग में लाने की प्रेरणा करते हैं। वे कहा करते हैं कि हमारे गुरुलोग भी इसी प्रकार लोक-कल्याणार्थ कर्म किया करते थे। यदि कृत-कृत महापुरुष ही स्वकर्म न करते तो क्या साधक शिष्यगण आलसी न बन जाते? मोहवश मैं भी पहले पहले सेवाकार्य से उदासीन रहता था। आश्रित-वत्सल श्री स्वामी जी चेताया करते कि तुम बड़े परमहंस बन गये तो मुझ जैसे साधारण साधु के पास रहने का तुम्हारा क्या प्रयोजन! हम भी अपने को परमहंस नहीं समझते। ऐसे परमार्थ सम्बन्धी उपदेश सुनने पर मैं भी कभी-कभी दुःख अनुभव करता। कभी उनकी आज्ञा बिना इधर उधर घूमने चला जाता। परन्तु कुछ देर के वियोग से ही स्वामी जी के दर्शनों की प्रबल इच्छा हो उठती। अतः उनके पास आता रोता-बिलखता। वे

तत्क्षण ही सारे अपराध भूल जाते। अति प्रेम से मधुर-वाणी कहते हुये हँस देते।



एक बार ऐसी ही शिक्षा हमारे वन्दनीय स्वामी जी ने हमें दी। गरमी का मौसम था, दोपहर को भोजन करके तथा जूटे बर्तनों को ज्यों का त्यों छोड़कर हम सभी शिष्य-गण सो गये। कुम्भकर्ण की उपासना हम अच्छी जानते थे। स्पष्ट है उपासक उपास्य के अनुरूप हो जाता है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। रावणानुज की मोह-निद्रा ने यदि स्वामी नहीं तो उनका छोटा भाई अवश्य बना दिया। निर्वाण सुख को भी निद्रा-सुख के समक्ष तुच्छ समझने लगे। अति चंचल समय भला हमारे लिये रुकता? सूर्य-देव भी गिरिशिखरों में तिरोहित होने लगे। हमें क्या पता। भला निद्रा-समाधि में कभी विक्षेप हो सकता था। भगवान् 'न चाति स्वप्न-शीलस्य' इति, अर्थात् यथा समय यथोचित कर्म करने से ही योग प्राप्त होता है। परन्तु हमें ऐसे योग से क्या प्रयोजन? फिर भी आपत्ति ही आपत्ति। अस्तु किसी पुण्य विशेष से निद्रा भंग हुई। बाहर आते ही सन्ध्या समय देख अचम्भित हुये। बर्तनों को साफ करने की याद तत्काल ही आयी, वहाँ पहुँचे, क्या देखते हैं शुद्ध साफ बर्तन यथा स्थान रखे हुये हमारे सेवा गौरव का प्रत्यक्ष उपहास कर रहे हैं। आलसी-मन पहले प्रसन्न हुआ, तथा हम एक दूसरे को पूछने लगे भाई तुमने कब यह काम किया। सबने मैं न, मैं न, कहकर उत्तर दिया। तदनन्तर यथार्थ ज्ञान हो गया। फिर, आज स्वयं स्वामी जी से रोये, माफी मांगने लगे, पश्चाताप करने लगे, परन्तु दयानिधि हाव-भाव व्यवहारिक से भी अप्रसन्न प्रतीत न हुये। यह शिक्षा हमारे हृदयपट पर सदा-सदा के लिये अमिट-छाप छोड़ गई।

यदि कभी बर्तन लापरवाही-पूर्वक साफ किये होते, तो सबके मौजूद होते भी स्वामी जी किसी से कुछ न कहकर स्वयं साफ करते और तब कहते 'देखो बर्तन कैसे साफ होने चाहिये' कई बार हमारी अवस्था, आलस्य को मुंह-तोड़ जवाब देने के लिये श्री गुरुदेव को गोशाला भी साफ करनी पड़ी। ऐसे कितने ही काम स्वामी जी हमारे परोक्ष में कर देते हैं, जिनका पता हमें बहुत दिन बाद लगता है। परन्तु फिर भी श्री गुरुदेव के स्वभाव में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। विचारवान के लिये गुरु-देव आदर्श-गुण-खान हैं। इसी प्रकार अतिथि सेवा भी गुरु-देव बड़े प्रेम व चाव से करते हैं। इतनी वृद्धावस्था में भी हमारे गुरु-देव अनपेक्ष हो





कर्म—तत्पर रहते हैं। तथापि स्वधर्म समझ कर श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही सेवकों के लिये कल्याण कारक होता है। स्वामी जी अक्सर कहा करते हैं यद्यपि मेरा कोई भी धर्म नहीं है तथा ये सारे व्यवहार तुम्हारे लिये ही कर रहा हूँ।



यह नियम संपन्न हमारे गुरु—देव की गुरुदेव की असाधारण आसन सिद्धि है। आठ दस घण्टे एक आसन पर स्थित—भाव रहना उनके लिये साधारण बात है। भगवत्—परायण आदि सुअवसरों पर हमने ठोस गुण का उनमें प्रत्यक्ष दर्शन किया। वे यम—नियमों को भी सर्वांग पूर्ण ढंग से जीत चुके हैं। प्राणायाम यम के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। श्री स्वामी जी के मधुर भाषण तथा प्रखरतेज से विदित होता है कि वे अवश्य प्राणायाम जप कर चुके हैं। परन्तु प्राणायाम की साधारण क्रिया को छोड़कर कभी भी स्वामी जी ने हमें हठयोग का आदेश नहीं दिया। उनका विचार है कि अनेक प्रकार की आपत्तियाँ हठयोग के कारण उठानी पड़ती हैं। प्रत्याहार का अद्भुत प्रभाव उनमें दिखाई दिया। हमारा अनुभव है कि क्षुधा, पिपासा, निद्रा आदि साधारणतया उनको प्रभावित नहीं कर सकती हैं। ये सारे अनुभव हमें साथ रहने वालों को समय समय पर हुआ करते हैं। विस्तार भयवश उनका चित्रण यहाँ नहीं कर सकता। वे स्वयं कर्म कुशल हैं साथ ही निर्लेप भी। महापुरुष कभी अनुद्विग्न नहीं होते हैं। 'यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांचति' के अनुसार सारे लक्षणों का दर्शन आप हमारे गुरु देव में कर सकेंगे।



जब बुद्धि सात्विकी हो जाती है तब ऐसे सूक्ष्म भावों का बोध होता है। अन्यथा असम्भव है। एक बार नहीं वरन् अनेकों बार वे समस्त परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। एक बार छद्म—वेष धारी साधु चोरनारायण उनकी घड़ी, पेन (कलम), पैसा आदि बहुत भौतिक सामान को चुरा ले गया। ज्ञान—रूप धन अपने पास देखते हुए उन्होंने किंचित भी खेद नहीं किया तथा पूर्ववत् प्रसन्न रहे। एक दिन अपने परम पूज्य गुरुदेव की समाधि (मृत्यु) की खबर सुनकर भी गुरुदेव ने तनिक भी मोह नहीं किया। इस बात का साक्षी मैं स्वयं हूँ। ऐसे ही एक बार उनकी परम प्यारी गौ को शेर ने मार दिया, फिर भी गुरुदेव चिन्ताग्रस्त नहीं हुये। उनके विचार से शरीर—त्याग

करना कोई मृत्यु नहीं कहलाती। महापुरुषों का रोना, क्रोध करना आदि कर्म केवल नाटकीय होते हैं।

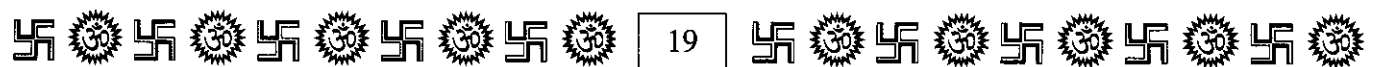


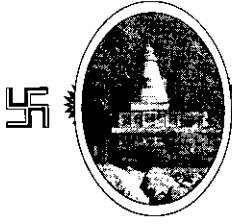
वसिष्ठाश्रम के पास कोई स्कूल न होने से स्वामी चिन्तित होते। क्योंकि इस इलाके में बहुत दूर तक स्कूलों का नाम तक नहीं है। अतः समीपस्थ सारे ग्रामीण अधिकतर निरक्षर हैं। अतएव श्री स्वामी जी ने एक मिडिल—स्कूल की स्थापना की जिसको लगभग एक साल हो गया है। आज कल श्री गुरु—देव उसी स्कूल की इमारत बनाने का उद्योग कर रहे हैं। यद्यपि मान—प्रतिष्ठा से भी परे पदार्थ को ही वे अधिक महत्त्व देते हैं तथापि मैं अज्ञान—वश एक दिन बोल उठा कि यदि यह काम पूरा हो जाता तो आप स्वस्थ व निश्चिन्त हो जाते। तब दया—सागर बोले—मैं तो अभी भी स्वस्थ व निश्चिन्त हूँ। धन्य है महापुरुष आपकी दिव्य भावना को। 'हत्वापि स इमान् लोकान् न इन्ति न निवध्यते।'



सत्संग में महाराज कह रहे थे, इसी जन्म में अर्थात् अभी पुरुषार्थ करो, तथा ज्ञान का साक्षात्कार करो नहीं तो कल का नाम काल है। अतः कल के लिये कोई काम शेष मत रखो। प्राणी मुमुक्षु काल का विश्वास न कर सारे संकल्पों का त्याग कर सर्वदा आत्मानुसंधान में ही तत्पर रहे। प्रारब्ध के ऊपर शरीरार्पण करे। हानि—लाभ में समभाव रखे। हमेशा सन्तुष्ट रहे। बाल से श्री स्वामी जी ने पूछा—'ज्ञान से कर्म का क्या सम्बन्ध है?' तब मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि ज्ञानी का कर्म बन्धन कारण नहीं होता। पुनः श्री स्वामी जी बोले—परम—ज्ञान से कर्म सम्बन्ध नहीं होता। जैसे सूर्य में अन्धेरा नहीं रह सकता, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म का मेल नहीं है। साध्य अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। निर्वाण—समाधि में अखण्ड एक सत्य—वस्तु ही रह सकती है। साक्षात्कार में सहज—भाव से द्वैत—भाव नहीं रहता। वहाँ सच्चिदानन्द से परिपूर्ण आत्माओं में वाणी आदि उपकरणों का प्रवेश नहीं होता।

मंगल सदगुरो—देव  
मंगल पुरुषोत्तम  
मंगल गुण—निधे ब्रह्मन्,  
ज्ञान—मूर्ते नमोस्तु ते॥





## ॥ श्री गुरुदेवाय नमः ॥

— स्वामी कालिकानन्द

भगवान् पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज भगवदनुभूति के लिए एक अद्भुत मार्ग दर्शक, अकृत्रिम और निश्चल प्रभुभक्ति की अप्रतिम मूर्ति हैं। सहस्रों निष्कपट अभ्यागत भक्त इनके

आत्मविभूतिमय दर्शन पा मंत्र-मुग्ध हो गए और प्रभु-भक्ति का रसास्वादन करने लगे। ये ऐसे सन्त के नाम से विख्यात हैं जो अतिमितभाषी हैं और सर्वदा ही प्रभु-भक्ति में लीन रहते हैं। ये बाह्य विषयों से चित्तविरोध और अन्तर्ध्यान पर अधिक बल देते हैं।



स्वामी कालिकानन्द जी

प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय स्वामी जी ने हिमालय में वर्षों तक घोर तपस्या के अनन्तर पवित्र जाह्नवी तट पर विशाल व निबिड वनस्थली के मध्य में स्थित वशिष्ट गुहा को अपनी ध्यान स्थली-चुना। इससे पूर्व यह गुहा सर्वथा अज्ञात थी। केवल कुछ वर्षों से प्रभु-भक्त दर्शनार्थियों ने प्रकाश की साक्षात् मूर्ति स्वामी जी के दर्शन किये और अपने आपको कृतकृत्य समझा। स्वामी जी अति मितभाषी हैं; परन्तु अभ्यागतों के कल्याणार्थ वे अपने मुखारविन्द से संक्षिप्ततः इसी उपदेश-संदेश को दोहराया करते हैं— 'सत्यनिष्ठ और निष्कपट रहो तथा अन्तर्ध्यान द्वारा आत्मान्वेषण करो।' यही उनका सदुपदेश हमारे कानों में गूँजता रहता है और हम स्वयं अनुभव करते हैं कि यह आध्यात्मिक संदेश कितना सच्चा है। अन्तर्ध्यानबद्ध स्वच्छ हृदय से अथक और घोर तपस्या के बिना प्रभु सम्बन्धी यत्किंचित् ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। प्रभु को समझने तथा ब्रह्मानन्दरस प्राप्त करने के लिए हृदय की स्वच्छता तथा पवित्रता अनिवार्य है। प्रभु का वास सदा निर्मल हृदय में ही होता है। अतः प्रभु प्राप्ति तथा उसकी अनुभूति के लिए हृदय मन्दिर को स्वच्छ रखना अत्यावश्यक है।

स्वामी जी महाराज के इस अनुपम सन्देश को सर्वदा ही याद रखिए :- "सत्यनिष्ठ और निष्कपट रहो तथा अन्तर्ध्यान द्वारा आत्मान्वेषण करो।" यही उपदेश वे बार-बार दोहराया करते हैं।

□□



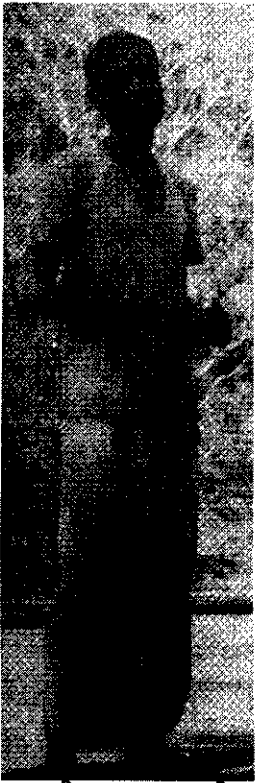


## श्री गुरुमहाराज के एक शिष्य- स्वामी भूमानन्द

(“अतीत यात्रा” – स्वामी ज्ञानानन्द गिरि की पुस्तक से उद्धृत)

भूमानन्द अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत विषयों में एम.ए. करने के उपरान्त कम आयु में ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में प्रवक्ता हो गये। उस समय उनका नाम शशि भूषण मिश्रा था। वह ब्राह्मण जाति के थे, जो पारम्परिक रूप से वेदों का अध्ययन करते हैं।

जब वह अपने विद्यार्थियों को भारतीय दर्शन पढ़ाते थे तो सहज रूप से उनको ब्रह्म ज्ञान मुक्ति आदि विषयों पर भी व्याख्यान देना पड़ता था। “ ब्रह्म क्या है?” उनके लिये यह एक अन्वेषण का विषय बन गया। दिन रात वह इस पर विचार करते रहते परन्तु उनको अपनी जिज्ञासा का समाधान नहीं मिल सका। अपने प्रश्न का उत्तर खोजने के अतिरिक्त उनको अन्य किसी बात से संतुष्टि नहीं हो रही थी।



स्वामी भूमानन्द जी

एक दिन रात्रि के समय उनकी आत्मा का प्रकाश स्वयं ही उनके समक्ष प्रकट हो गया जो प्रकाश भीतर था वही बाहर भी था। सर्वत्र एक अनन्त विस्तार, जिसमें उनका शरीर भाव विलीन हो गया। उस प्रकाश की अनुभूति थोड़े समय तक रही, किन्तु इसका प्रभाव इस युवा प्रोफेसर पर इतना अधिक हुआ कि अगले ही दिन उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। वह मानव अस्तित्व की पहली को हल करने के लिये कृतसंकल्प थे। अतः अपने वास्तविक आध्यात्मिक स्वरूप के नव अन्वेषित आयामों में वह प्राण-प्रण से कूद पड़े।

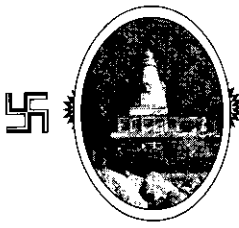
आगे का मार्गदर्शन प्राप्त

करने हेतु पहले वह हरिद्वार आये फिर वहां से ऋषिकेश आये। वह अनेक आश्रमों और संस्थानों में गये किन्तु हर जगह उनकी तीक्ष्ण बुद्धि ने अन्यत्र जाने के लिये प्रेरित किया। एक बार उन्होंने स्वयं ही पथिक को बतलाया कि उन स्थानों पर उन्होंने जो कुछ देखा, उसे देखकर उन्हें बहुत निराशा हुयी। उनके पास व्यर्थ नष्ट करने को समय नहीं था। अतः माँ गंगा के आशीर्वाद पर श्रद्धा रखते हुए वह प्रेरणावश आगे ही बढ़ते गये।

इस प्रकार वह वशिष्ठ गुहा पहुंचे। स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी नवयुवक की क्षमता को .....पहचान गये। केवल तीव्र वैराग्य से युक्त अत्यन्त विकसित व्यक्ति ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है।

मिश्रा जी ने अन्तिम पग उठा लेने का संकल्प अपने हृदय में धारण कर लिया था। एक दिन वह माँ गंगा के पास गये। उनका मन और हृदय दोनों ही महान त्याग करने के लिये पहले से ही तैयार थे। गंगाजी में स्नान करते समय उन्होंने गंगाजी की तेज धारा में सफेद कपड़े में लिपटे एक मृत मानव शरीर को बहते देखा। पलक झपकते ही वह नवयुवक तैरकर उस मृत शरीर के पास पहुंच गया और उसके सफेद कपड़े को खींचकर उतार लिया। किनारे पर वापस आकर पहले तो उसने अन्तिम त्याग के प्रतीक स्वरूप अपने सारे वस्त्र उतार कर गंगाजी में प्रवाहित कर दिये, फिर उस अजनबी मृत व्यक्ति के शरीर से उतारे गये गीले वस्त्र अपने शरीर पर लपेट लिये।

इतना करने के उपरान्त वह महान त्यागी नदी के निकट ही एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये और ध्यान में लीन हो गये। अब वह न तो स्वयं ही किसी से बात करते और न किसी के बोलने पर कोई प्रत्युत्तर ही देते। एक के बाद एक दिन व्यतीत होते गये। भोजन उनके पास ही लाया जाता था जिसे कभी तो वह ग्रहण कर लेते और कभी कुत्तों और मछलियों को खिला देते। अनेक लोगों द्वारा उनके इस



व्यवहार को असंतुलित बताया गया। इसी प्रकार दिन, सप्ताह और महीने व्यतीत होते गये परन्तु नवयुवक ने वृक्ष के आश्रय को नहीं छोड़ा। वह केवल कभी-कभी गंगाजी में स्नान करने के लिये जाते थे। कुछ आश्रमवासियों ने सोचा कि यह मानसिक रूप से विकसित हो गये हैं।

केवल गुरु महाराज ही अपने नवीनतम शिष्य की प्रतिभा को पहचानते थे। उनका दृढ़ मत था कि सब कुछ ठीक है। वह अनन्त में लीन हो गया है। अब वह 'भूम' है। भूमानन्द शीघ्र ही उठेगा और पुनः हम लोगों के बीच होगा।

इस प्रकार लगभग छः माह व्यतीत हो गये। इस बीच वह साधु बिल्कुल ही उपेक्षित अवस्था में रहे तथा वह केवल अपनी न्यूनतम शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। फिर एक दिन अचानक ही भूमानन्द ने अपना बालू का आसान छोड़ दिया और वशिष्ठ गुहा के सन्यासियों और ब्रह्मचारियों के बीच पुनः लौट आये। अब उनका व्यवहार बिल्कुल ही सामान्य था। महाराजजी ने उस दिन को एक अत्यन्त शुभ दिन बताया और अपने शिष्य को गेरु से रंगे नये वस्त्र प्रदान किये। महाराजजी ने उनको "स्वामी भूमानन्द पुरी" नाम दिया।

भूमानन्दजी का अंग्रेजी भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार था। वह अपने गुरु की भांति केवल वांछित विषय पर बहुत थोड़ा किन्तु प्रभावी रूप से बोलते थे। कभी-कभी बोलते समय उनके मुखमण्डल पर एक मधुर मुस्कान अथवा हंसी छा जाती थी।

फिर, कभी जब भूमानन्द अपनी मौज में होते तो कहते कि वास्तविक सन्यासी के लिये बिल्कुल ही कोई बन्धन नहीं है। वह कुछ कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है। उसको केवल अहंकार से सावधान रहना होता है।

वशिष्ठ गुहा के कुछ त्यागी और कुछ गृहस्थ शिष्यों ने अनुभव किया कि कुछ कमरों का निर्माण होना चाहिए। यह विचार विशेषकर वर्ष 1954 की बाढ़ के उपरान्त आया। अतः भूतल पर तीन कमरों का और प्रथम तल पर महाराज जी के लिये एक कमरे का निर्माण अल्प अवधि में ही करवाया गया। आश्रम के आवासीय क्षेत्र के इस विस्तार को

देखकर स्वामी भूमानन्दजी ने बस एक टिप्पणी की, " यह सब एक अन्त का प्रारम्भ है। "

उनके द्वारा बोले गये ये वचन निश्चित रूप से किसी धर्म-प्रवर्तक द्वारा बोले गये वचनों के समान थे। उस वन्य स्थान का आकर्षण उसकी प्राकृतिक व्यवस्था थी। वहां पर निवास करना अपने आप में एक तपस्या थी। व्यक्ति को बड़ी गुहा की फर्श पर बिछी हुई नदी की बालू रूपी गद्दे पर सोना पड़ता था। लकड़ी की आग पर खुले आसमान के नीचे भोजन पकाया जाता था, जहां वर्षा और हवा से बचाव के लिये कैनवास की एक चादर ऊपर तान दी जाती थी। प्रत्येक साधू अच्छी तरह जानता है कि आध्यात्मिक आकांक्षाओं की अग्नि सबसे अधिक तीव्रता के साथ तब प्रज्वलित होती। जब जीवन साधारण, स्वतंत्र तथा प्रकृति के सान्निध्य में होता।

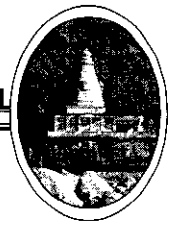
उनको मलेरिया हो गया जिसके कारण इनको ज्वर रहने लगा अतः इनको कनखल में स्थित श्री राम कृष्ण सेवाश्रम अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। स्वास्थ्य को प्रभावित करते ज्वर के बार-बार के दौरों भी उनकी विनोदप्रियता को कम नहीं कर सके। उन्होंने हमारे पथिक से यहां तक कहा कि अस्पताल में कभी-कभी कुछ दिनों तक रहने से मिलने वाले विश्राम से शरीर को एक राहत मिलती है। यहां ध्यान देने योग्य है कि भूमानन्दजी व्यक्ति के देहाध्यास से लिपटे रहने की ओर व्यंग्यात्मक टिप्पणी कर रहे थे।

जब उनसे पूछा गया कि वृक्ष के नीचे बिताये गये दिनों में वह कैसा अनुभव कर रहे थे, तो उन्होंने बस इतना ही कहा कि यह वह समय था जब उनको वह करना था जिसके लिये वह इस जगत में आये थे।

यह वर्ष 1960 की बात है, सम्भवत चार नवम्बर की, जब हमारे पथिक स्वामी और स्वामी कृष्णानन्द को हरिद्वार में सड़क पर समाचार मिला कि भूमानन्दजी शरीर त्यागने वाले हैं। उनसे कनखल के अस्पताल में भेंट की जा सकती है।

निर्वेदानन्दजी और उनके गुरु महाराज पहले से ही वहां पर थे। भूमानन्दजी पूर्ण रूप से चेतन अवस्था में थे





परन्तु उनका भौतिक शरीर विघटित होने लगा था। उनकी स्पर्शन्द्रियों ने कार्य करना समाप्त कर दिया था और उनकी त्वचा सुन्न पड़ गयी थी। उनकी दृष्टि का क्षेत्र भी सीमित हो गया था। अब वह एक ही दिशा में केवल सामने की ओर देख सकते थे। पथिक—स्वामी की आवाज सुनकर उन्होंने उनसे अपने सामने खड़े होने का निवेदन किया जिससे वह उनको देख सकें। उन्होंने स्वामीजी और सन्यासिनी योगमाया की कुशलता के बारे में जानकारी प्राप्त की। इसके उपरान्त भूमानन्दजी का मन पुनः अन्तर्मुखी हो गया और वह आत्मा के अमरत्व और योगी के मृत्यु के परे जाने से सम्बन्धित उपनिषद् और गीता के श्लोकों का पाठ करने लगे।

उस समय वहां पर रामकृष्ण मिशन अस्पताल के स्वामीगण और गुरुमहाराज भी उपस्थित थे। सभी लोग उन आत्मोन्नत कर देने वाले क्षणों से अत्यधिक प्रभावित थे।

भूमानन्दजी अब भौतिक रूप से उपलब्ध नहीं रहेंगे, इसका दुःख भी सबके मन में था। इसके उपरान्त भी वे क्षण अत्यधिक प्रेरणादायक थे। यह देखकर विस्मय हो रहा था कि मृत्यु—शय्या पर लेटे स्वामी कैसे संस्कृत श्लोकों का स्पष्ट और त्रुटिहीन उच्चारण कर रहे थे। लगभग एक घंटे के उपरान्त भूमानन्द मौन हो गये। वह या तो निद्रा में चले

गये या समाधिस्थ हो गये।

स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी महाराज ने अपना ऊनी शाल उतारा और निर्वेदानन्द को देते हुए बोले, “ जब सब कुछ समाप्त हो जाये तो उसके शरीर को इससे ढक देना। यह सब दो दिनों के भीतर हो जायेगा। मैं अब गुहा वापस लौट जाऊँगा। ” इस प्रकार गुरु ने विदा ली। स्वामी और ब्रह्मचारी लोग बारी—बारी से भूमानन्द जी के पास उनके बिस्तर के बगल में रहते थे। तब तक उन्होंने किसी से भी बातचीत करना एकदम बन्द कर दिया था। परन्तु किसी—किसी समय वह मनुष्य की शाश्वत् खोज का स्मरण कराने वाले शास्त्र—श्लोकों का उच्चारण करने लगते थे। दूसरे दिन उनके होठों पर केवल फुसफुसाहट ही रह गयी थी। वह फुसफुसाहट केवल ईश्वर के नाम की थी।

अस्पताल के निकट बाजोरिया भवन है। हमारे पथिक और कृष्णानन्द ने दोपहर का भोजन समाप्त ही किया था कि एक संदेशवाहक आया और सूचना दी कि भूमानन्दजी ने शरीर त्याग दिया है।

महाराजजी की वाणी सत्य हुई। भूमानन्दजी का भौतिक शरीर ठीक दो दिनों के बाद छूट गया।



## श्री गुरुमहाराज की आरती

— डा. एस.एन. श्रीवास्तव

ओ३म् जय सदगुरु स्वामी। सुख सम्पत्ति सदबुद्धि—दानी ॥ ऊँ जय ॥

जो बिनवै सुख पावे, निर्भय हो ज्ञानी ॥ ऊँ जय ॥

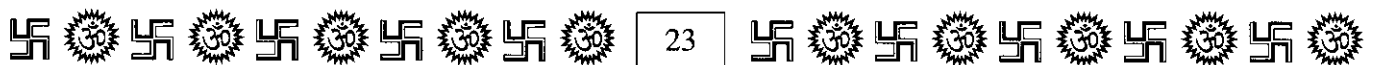
काम क्रोध मद लोभ मिटै सब, शरण पड़े जो भी प्राणी ॥ ऊँ जय ॥

कृपा—दृष्टि हम पर हो स्वामी, हम सब हैं पापी कामी ॥ ऊँ जय ॥

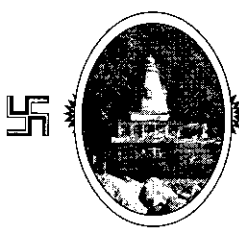
मात—पिता, गुरु—ब्रह्म तुम्हीं हो, शरण जाऊँ किसके स्वामी ॥ ऊँ जय ॥

सर्वार्थ ईर्ष्या पास न आवै, मधुर बने अपनी बानी ॥ ऊँ जय ॥

सर्वार्थ तव चरणन में, पुरुषोत्तम आनन्दस्वामी ॥ ऊँ जय ॥







## श्री सदगुरुसान्निध्य

— स्वामी रघुवीर—आनन्दपुरी

अदौ ते भगवत्कथाभिरमणं श्रीवल्लभाराधनं  
पश्चन्निर्मलदेशिकोपगमनं बेलूर्मठासेवनम्।  
संन्यासग्रहणं तपांसि चरणं ब्रह्मात्मसंवेदनं  
शिष्यानुग्रहणं गुहाधिवसनं लीलामृतं पातु नः।।

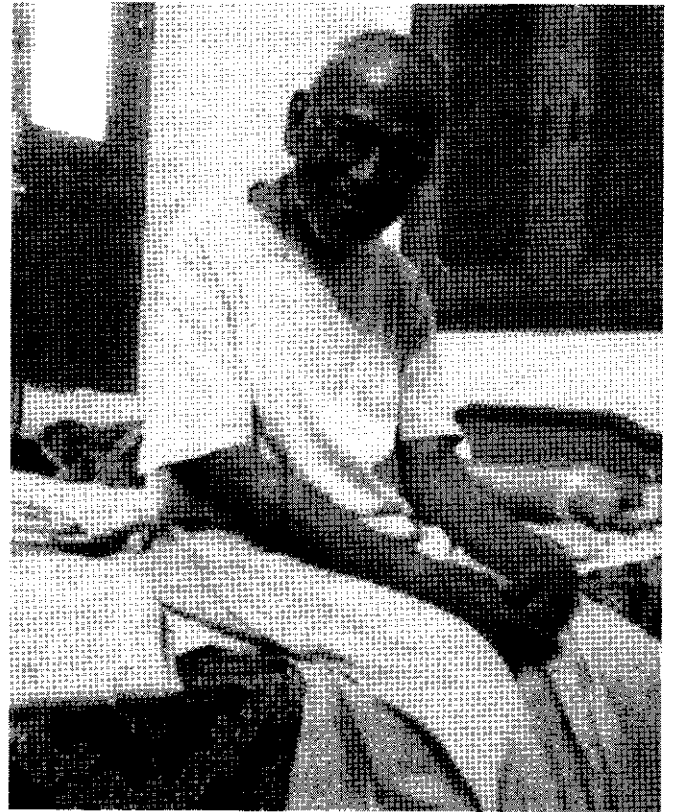
‘प्रथम श्रेणी के संत में वैभवों की इच्छा व प्राप्ति दोनों का अभाव है, द्वितीय श्रेणी में इच्छा के अभाव में भी प्राप्ति है, तृतीय श्रेणी में इच्छा व प्राप्ति दोनों है, चतुर्थ श्रेणी में इच्छा के होते हुए भी प्राप्ति नहीं है।’ इस शास्त्र वचन के प्रकाश में प्रथम श्रेणी के गुरु की खोज में तीन वर्ष से असफल होता हुआ अंत में मैं ऋषीकेश रुक गया था। वहाँ, प्रातः स्मरणीय महाराज श्री की ‘आत्मकथा’ पढ़ने पर विषयों की उपस्थिति में प्रसुप्त वासनाओं की तरह मेरी आशा पुनः जाग्रत हुई; परिणामतः सन् १९५६ मई दिनांक १३ अपराह्न ३-३० बजे मैं वसिष्ठागुहा पहुँचा था।

महाराज श्री के विरक्त शिष्यों की मण्डली जिसमें सभी विभिन्न भाषा भाषी तथा गिनती में भारतवर्ष की लिपियुक्त भाषाएं जितनी थीं, प्रांगण में ही मिली। उनके दर्शन व भाषण तथा वहाँ के दृश्य व वातावरण आदि के सहयोग से उच्छ्रूलखता प्राप्त मेरी आशा अंकुरित होने लगी थी। उनसे अवगत हुआ कि महाराजश्री अभी सत्संग-प्रवचन हेतु आएंगे।

ठीक चार बजे महाराज श्री-प्रसन्न गम्भीर मुखमण्डल, हिम शुभ दाढ़ी केश, वलीयुक्त पलकों के बीच ज्वलंत निर्मल नेत्र, अवशिष्ट कुछ दाँतों से टकराने से शिशु से भी अधिक मनोहरी सदा वर्तमान विमुक्त हास, विशाल वक्ष-स्थल सुदीर्घ भुजाएँ पूर्ण स्वस्थ एवं स्फूर्तिमान काया, रणोद्यत नरेश तथा खिलौने से लगे शिशु की तरह तत्परता-ये सब ही तो बाह्य दृष्टि से महाराजश्री थे - सत्संग गद्दी की ओर पधार रहे थे। चन्द्रमा में कलंक तथा गुलाब में कांटा आदि जोड़ने वाले विधिहस्त की चतुराई स्पष्ट थी कि महाराजश्री के पैरों की समानता में कुछ अंतर था। याद आया - “कश्मीरसारकटुतापि रसावहा में” (केशर का कडुआपन भी अच्छा ही लगता है)। दर्शन से ही मेरी आशावल्ली में कलियाँ लगने लगी। शिष्य मण्डली के साथ अंत में मैं भी

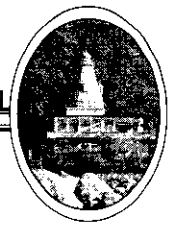
नमस्कार कर श्रवणार्थ बैठ गया।

“कहाँ से हो” यह प्रश्न महाराज जी द्वारा ‘मलयालम’ भाषा में मेरे प्रति था। उत्तर देने से पूर्व ही आश्चर्य ने मुझे घेर लिया था कि महाराज श्री मुझे ‘मलयालम भाषी’ कैसे समझ गये! आप की मित भाषिता से अनभिज्ञ होने से प्रश्न मात्र का ही उत्तर मैंने दिया; सुनकर आप सत्संग-प्रवचन में प्रवृत्त हुए। अपनी आंतरिक बातें महाराजश्री से बताने के उचित अवसर की प्रतीक्षा में मैं आश्रम में रुक गया। प्रथम वीक्षण से ही मेरे अंतरंग के अंतःस्थल तक को जांचे हुए महाराज जी किसलिए मुझे अवसर देंगे? अनाहूत अतिथि की तरह मेरा दिन जाता रहा। एक ब्रह्मचारी जी ने आश्रम की रीति-नीति सुनाया कि “यहाँ अभ्यागतों की तीन दिन सेवा



स्वामी रघुवीर—आनन्दपुरी जी





होती है, आज आपका तीसरा दिन है।" मैंने अपनी प्रतीक्षा का विषय बतलाया। विषय महाराज जी के कानों तक पहुँच जाने पर आप का कथन कि 'वह नहीं जायेगा, यहीं रहेगा'— यह मुझे छ' माह के बाद विदित हुआ। यहाँ उल्लेखनीय है कि मेरे विगत तीन वर्ष के भ्रमण में कन्याकुमारी से ऋषीकेश तक गुजरे। असंख्य आश्रमों में से बहुतों के आग्रह पूर्वक रोकने तथा एक जगह दी गई जबरन सन्यास दीक्षा को भी टुकराकर आये मेरे विषय में ही महाराज श्री उपरोक्त निर्णय व्यक्त कर रहे थे।

आश्रम के सर्व कार्यक्रम में मैं भी भाग लेता था। एक दिन सत्संग—प्रवचन का श्रवण कर रहा था कि महाराजश्री द्वारा मेरे प्रति प्रश्न उठा—'हे! माता की क्या उम्र है?' सत्संग के मध्य में अप्रतीक्षित एवं प्रयुक्त इस प्रश्न से सभी आश्चर्य पूर्वक मेरी तरफ देख रहे थे। मेरा उत्तर सुन कर महाराज जी ने कहा— 'हाँ, हाँ, सब स्वस्थ और सुखी हैं, अब यहाँ ध्यान देकर सुन।' वस्तुतः मैं नहीं जान पाया था कि मेरा ध्यान यहाँ से इतना दूर चला गया है।

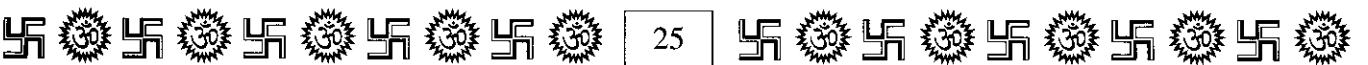
तथाकथित अतिथि के रूप में मेरा आठ सप्ताह व्यतीत होने पर गुरुपूर्णिमा की पूर्व तिथि को मैं प्रांगण में खड़ा देख रहा था कि महाराज श्री छत के ऊपर से हाथ के संकेत द्वारा मुझे बुलाकर स्वयं अपने आसन पर जा विराजे। इस कालावधि के बीच मेरे आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक विषयों की विविध परीक्षाएँ महाराज जी द्वारा अपनी सूक्ष्म पद्धति से ली जा चुकी थी। मेरे पहुँच जाने पर नीचे घटाई पर बैठने के आदेश के साथ एक सूत्र (मितभाषिता का पोषक सूत्र वाक्य ही हुआ करते हैं) भी फरमाया कि 'जब से होश सम्भाला तब से आज तक अपने साथ घटी मुख्य—मुख्य घटनाओं को सुनाओ।'

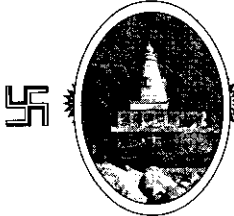
मेरे सम्मुख घटती जा रही घटनाओं के आलोक में मुझे लग रहा था कि मुझसे प्रश्न कर सुनना, परीक्षा लेना आदि केवल विडम्बना मात्र ही है। मैंने ३०/४० मिनट तक अपना ब्योरा प्रस्तुत किया। सुन कर पुनः प्रश्न— "अब क्या विचार है, विवाह करना नहीं चाहते हो?" मेरा उत्तर सुनकर महाराज जी बोले— "कल गुरुपूर्णिमा है, प्रातः गंगा स्नान के बाद जल पुष्प आदि लेकर आना; मंत्र दीक्षा दी जायेगी।" तदनुसार क्रमपुष्पित मेरी आशावल्ली गुरुपूर्णिमा के दिन से फलना शुरू की।

अब मैं अतिथि नहीं रहा, सदस्य था ही; अतएव सहज प्राप्त अवसरों पर महाराजश्री के समीप जा बैठता था। एक दिन मैंने निवेदन किया कि मैं तब से नित्य प्रति नियमित रूप से उसी मंत्र का जप करता हूँ जो विष्णु भगवान के नाम से मुझे दिया गया था; किन्तु प्रारम्भ काल से ही मेरे इष्टदेव शंकर भगवान रहे! सुनकर महाराज जी बोल— 'हे, तुम अभी भी नहीं जानते हो कि 'भगवान एक है, विभूतियाँ अनेक हैं।' पुनः गुणगुना रहे थे "शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः"। मुझे सम्प्रदान नहीं रहने से तथा अद्वैत वेदांत की ओर झुकाव रहने से सहज ही बात जँच गई।

इस प्रकार एक दिन मैं महाराजश्री के समीप पहुँचने पर आप को प्रज्ञातीत स्थिति में मैंने पाया। मुखच्छवि गवाह दे रही थी कि आप स्वयं किसी अज्ञेय स्थान अथवा अवस्था में आरूढ़ हैं। अतः मैं चुप बैठकर उस मुद्रा का रस पान करने लगा। लगभग आधा घंटे के बाद आप को मेरी उपस्थिति का भान होने पर प्रश्न किया कि 'हे, तुमने भगवान को देखा?' वस्तुतः मेरी क्या योग्यता थी कि उस अज्ञेय दृश्य को समझ सकूँ! अतः प्रश्न को मैंने अपने ढंग से मोड़कर उत्तर दिया कि, 'हाँ महाराज जी, देख तो रहा हूँ, पर, समझ नहीं पा रहा हूँ'। महाराज जी की पूर्व मुद्रा बदल चुकी थी, गम्भीर मुद्रा के साथ 'शिवोऽहम्' ध्वनि निकली, तुरंत पश्चात् 'ओम् शिवम्' ध्वनि के साथ अपलक, निश्चल, शान्त मुद्रा में करीब १५ मिनट अवस्थित रहे। मुझे लग रहा था कि प्रथम ध्वनि— शिव+अहं की छैतच्छाया के संशोधन ही 'ओम् शिवम्' से कर रहे हैं।

एक बार (सन् १९५७ जुलाई) मेरी बदरीनाथ यात्रा पर महाराजजी के दिये रुपयों में से शेष रहा एक पाँच रुपये का नोट एक लिफाफे में डाल कर तकिये के पास रख छोड़ा इस बात का ध्यान रहा भी नहीं। बदरीनाथ में सर्दी से मुलाकात करने एक दिन वर्षा भी आ पहुँची थी। आधुनिक शिष्टाचार मान कर चाय बनाने हेतु मुझसे चूल्हा सुलगाते नहीं बनता था। कागज की खोज में उसी लिफाफे को लेकर जलती मोमबत्ती से सुलगा ही रहा था कि बिजली के झटके की तरह लिफाफा हाथ से छूटकर दूर जा गिरा, खुल गया और वह नोट परिहास भरी तथा डरावनी दृष्टि से मुझे देख रहा था। मुझे महाराजजी का वाक्य याद आया— "तापक (अग्नि) और तापस दोनों के पास बड़ी सतर्कता से रहना होगा।" कुछ दिन बाद महाराजश्री का हस्त लिखित एक





पोस्ट कार्ड जिसमें दस ही अक्षर थे, मुझे मिला, जो इस प्रकार थे "मुझे देखते ही चले आना।"

सन् १९५८ में शिवानन्द आश्रम (ऋषीकेश) में रूग्ण अवस्था में शयान (स्वामी भूमानन्द जो अब न रहे) के स्वास्थ्य की स्थिति जानने हेतु एक शाम ५-३० बजे महाराजश्री मुझे ऋषीकेश भेज रहे थे। उन दिनों वहाँ मोटरें 'गेट' प्रथा के अनुसार चलती थी; उस दिन का अंतिम 'गेट-५-०० बजे निकल भी चुका था। अतः धीमी आवाज में मैंने कहा कि महाराज, गेट तो निकल गया, आधा घंटा हो गया। सुनकर महाराज जी बोले- 'हे! तुम जाओ जल्दी'। महाराज जी के समक्ष किसी की भी बहस (क्यों-कैसा) चलते मैंने न देखा न सुना था। आज्ञा यानी अलंघ्य है। अतः आज्ञा के अनुसार मैं मोटर सड़क पर पहुँचकर देखा कि एक ट्रक मेरी प्रतीक्षा में खड़ा था।

इस तरह की अगणित असाधारण घटनायें, जो महाराजश्री के स्वरूपमात्रावस्थान (सन् १९६१ महाशिवरात्रि) पर्यंत मेरे सम्मुख घटीं, को लिखकर व्यक्त करने का प्रयास ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार एक सूखी लकड़ी के सहारे से तैर कर समुद्र के पार पहुँचने की चेष्टा। अतः सन् १९५६ गुरुपूर्णिमा के दिन मेरी आशावल्ली में लगे और सन् १९५८ महाशिवरात्रि के शुभ पर्व पर पक्व हुए फल-संन्यास दीक्षा प्राप्ति के मधुर स्मरण के साथ उस फल का स्वाद और सुगन्ध परिमल-सुख व शांति-चिर स्थायी रहें यह कामना करता हुआ उन पूज्य चरणों में अंजलि समर्पित करता हूँ।

नानावर्णसुपुष्पाणि भावपक्वफलानि च।  
निर्द्वन्द्वे त्वत्पदाम्भोजनद्वन्द्वे यान्तूपहारताम्॥

□□

ॐ

-सुपर्णा वर्मा

नत शीश, नमन शत बार करें हम  
करने को जीवन डोर समर्पण  
विनती करते तुमसे... हे जीवन अवलंबन!  
आन उबारो! गुहाद्वार खड़े हम।

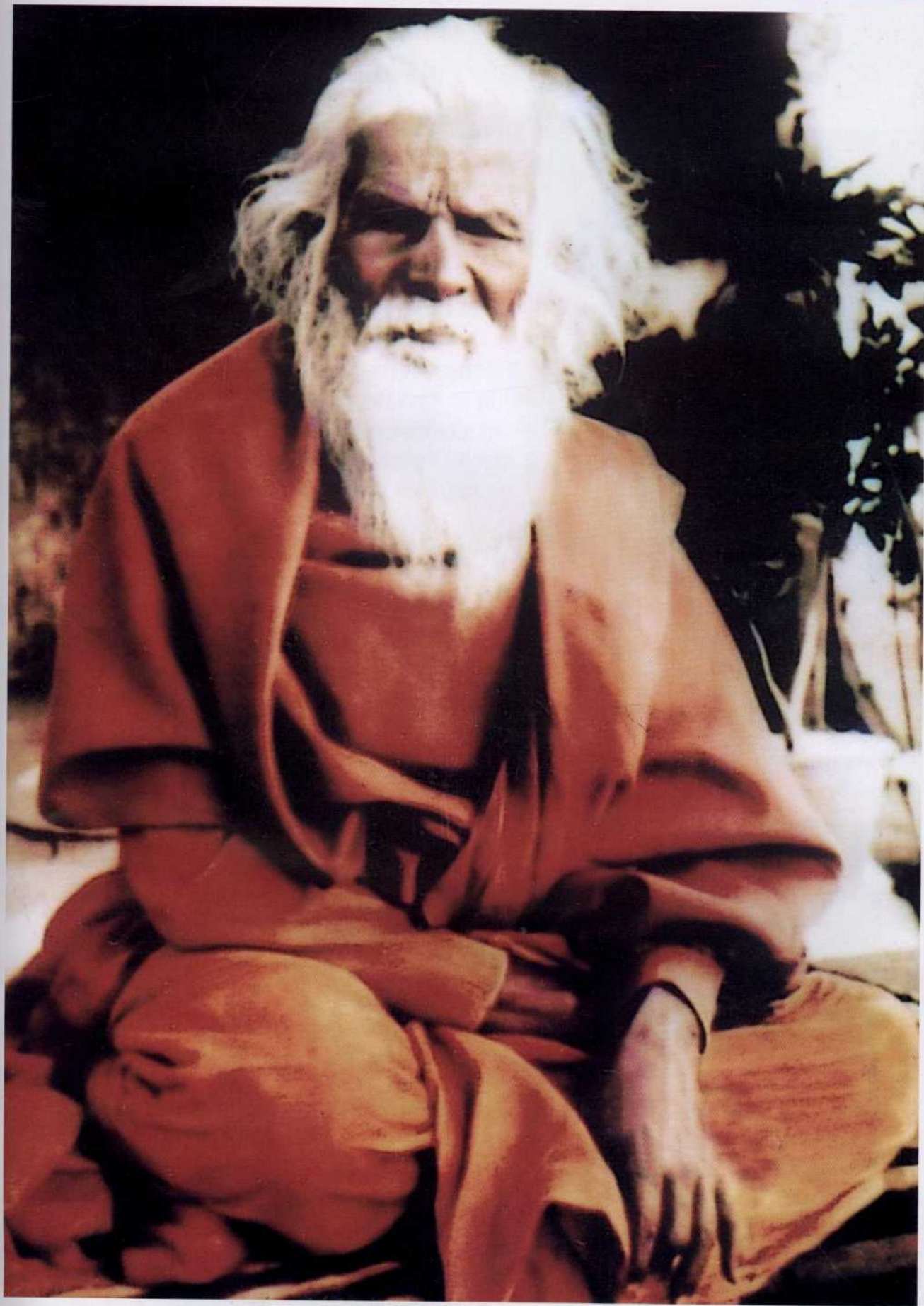
उत्तम वचन-श्रवण से हो आलोकित जीवन  
गूँजें श्लोकों की ध्वनि मनोरम  
प्रभु छवि देखूँ जब, भर आए मन...  
स्वीकारो प्रभु ये अश्रु-अभिनंदन!  
शरण बुला लो, गुहा द्वार खड़े हम।

अस्थिर श्वासों से निकले वचनों में कंपन  
विचलित मन का निशब्द निवेदन  
मोह-तिमिर से सराबोर है कण-कण  
निष्क्रीय जीवन में भर दो संवेदन!  
विनती करते गुहा द्वार खड़े हम।

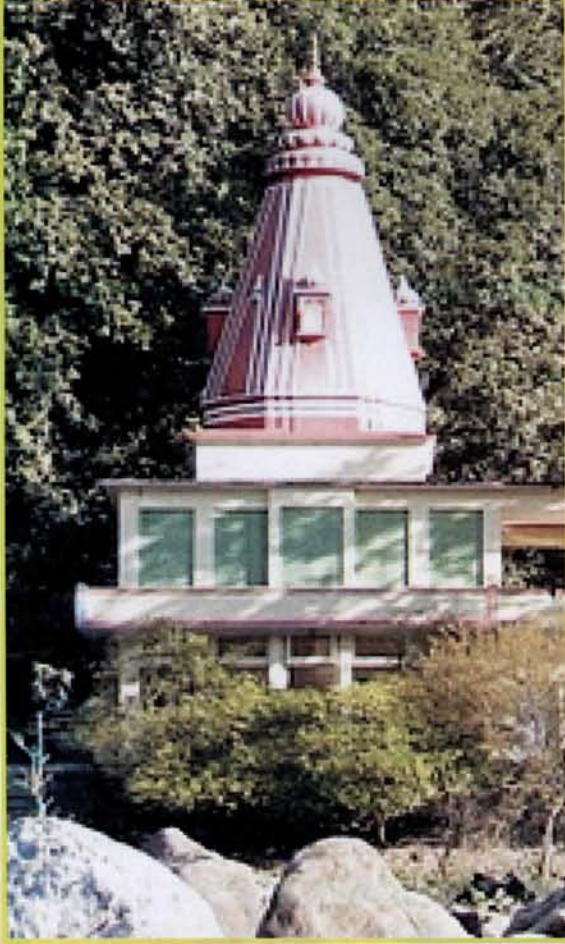
कर दो जीवन-उद्देश्य निर्धारण।  
हे निर्देशक! दिखला दो वो सूर्य-किरण  
जिसका करने से अनुकरण  
सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़े हम  
विनती करे! गुहाद्वार खड़े हम।

दुविधा स्थिति का करो समापन  
नौका का करो दिशा आवंटन  
पतवार में भर दो आशा-स्पंदन  
भय नहीं, प्रतिकूल पवन से, जो मिल जाये तेरा संग  
प्रभु संभालो ! गुहा द्वार खड़े हम।

उत्तर बनके आओ, जब भी हो विचार-मंथन  
स्वीकारो शब्दहीन स्तुति-वचन  
शब्द सभी मिलकर भी है अक्षम  
कर पाने में गुरु-स्तवन!  
अज्ञान मिटाओ! गुहा द्वार खड़े हम।



## वसिष्ठ गुहा आश्रम के मन्दिर में प्रतिदिन सायंकाल होने वाली श्री सद्गुरु की आरती



श्री रामकृष्णं जगतां शरण्यं,  
ब्रह्मानन्दं ब्रह्मसमाधिनिष्ठम्  
तच्छिष्यवर्यं पुरुषोत्तमं च  
गुरुनिमान् नित्यमहं नमामि

ॐ जय करुणालय गुरुवर जय सद्गुणसिन्धो,  
जय जय सद्गुणसिन्धो

पालय सत्वरमस्मान्-2 कृपया भवबन्धात् ॐ जय जय जय गुरुदेव  
मधुरमतोहरवचनं-मन्दस्मितवदनं-मृदु-मन्दस्मित...

परिहृत-संसृतिकदनं-2 प्रणमो मुनिमेतम्, ॐ जय-3 गुरुदेव  
हिमगिरिराजनितम्बे सुस्तटिनीतीरे-वरसुस्तटिनीतीरे  
प्रथितवसिष्ठगुहायां-2 कृततपसं ध्याये, ॐ जय-3 गुरुदेव  
दुस्तरदुरितपयोधौ पततां तरणार्थं परिपततां....

समुदितमिव पृथुपोतं-2 शरणं यामस्तम्, ॐ जय-3 गुरुदेव  
विविधागमकृतविवृतिं- हृदयगुहावसतिं निजहृदय...

ध्याये गुरुमात्मरतिं-2 विषयाशाविरतिम्, ॐ जय-3 गुरुदेव  
उन्नतशैलशिखरपरिवारितघनविपिने- परिवारित....

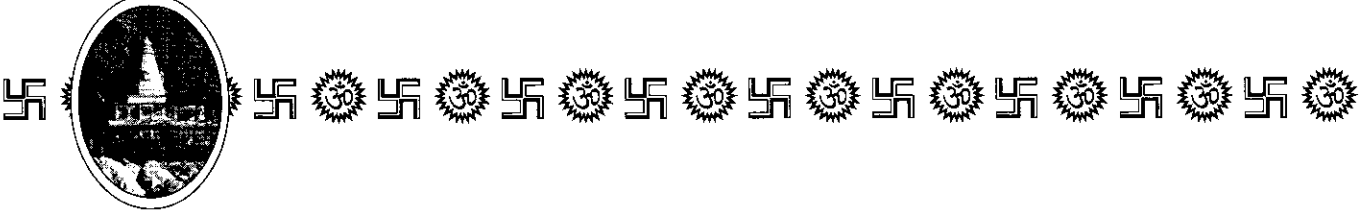
विहितगुहागृहवासं-2 भजतोज्ज्वलभासम्, ॐ जय-3 गुरुदेव  
सद्गुरुवर पुरुषोत्तम सच्चिन्मय मूर्ते, सुखसच्चिन्मय मूर्ते  
पारं भववारिनिधेः-2 प्रापय कृपयास्मान्, ॐ जय-3 गुरुदेव

ॐ जय करुणालय गुरुवर जय सद्गुणसिन्धो  
जय जय सद्गुणसिन्धो

पालय सत्वरमस्मान्-2 कृपया भवबन्धात्, ॐ जय-3 गुरुदेव







स्वामी बालानन्द जी का अनुशासन बहुत सख्त था वे एक बेंत रखते थे और उसी से उसकी पिटाई करते थे। आश्रम में इस कारण बहुत डर लगता था। वहां मंदिर में बहुत छोटे-छोटे बच्चे ५ साल के ८ साल के लड़के-लड़कियां मिलकर हरे राम-हरे राम कीर्तन करते थे। पूजा के समय दिन में गुड़ की खीर बनती थी। जो दिन में १२ बजे उन्हें दी जाती थी। एक दिन चन्द्रन ब्रह्मचारी मुझसे बोले मेरा आज साहित्य विशारद का पेपर है, पूजा का प्रबन्ध आप ही देख लेना, ऐसे बोलकर वो चले गये। इधर पूजा आदि करना मैंने शुरु कर दिया। वह फिर लौट कर नहीं आये। इस तरह डेढ़ साल हो गये, मेरे पास घर से लाया हुआ पैसा सब समाप्त हो गया। मैं महात्मा गाँधी के प्रभाव वाले सब कार्यक्रम-चरखा चलाना आदि जानता था। श्री स्वामी बालानन्द जी ने उसे बच्चों को सिखाने के लिये कहा।

श्री स्वामी बालानन्द जी नमक बिल्कुल नहीं खाते थे और दिन में बस एक बार भोजन करते थे। रात में बोलते थे, भिक्षा लेकर आ जाओ और वही खाओ। एक अंगौछा साथ में ले जाओ और तीन चार घर में नारायण हरि-नारायण हरि बोल देना। भिक्षा में जो मिले वही खाना। वहां भिक्षा करना भी मैंने सीख लिया। हम मंदिर में पूजा आदि करते रहे। वहां से घर ३०-४० किलोमीटर दूर था। इस तरह डेढ़ साल बीत गये। एक सज्जन वीरेश जी (जो अब प्रकाशानन्द हैं) मिलेट्री में थे वो वहां श्री स्वामी बालानन्द जी से मिलने आये थे। श्री स्वामी बालानन्द जी ने मुझसे कहा कि बीरेश गुहा जा रहा है उनके ही साथ तुम गुरु महाराज जी के पास चले जाओ। मैंने घर जाकर माता जी से मांगकर पैसों आदि का प्रबन्ध किया। महाराज जी को उपहार स्वरूप देने के लिये केरल में विशेष तरीके का बड़ा कटहल ले लिया। वह उत्तर में इधर नहीं मिलता। इस तरह वीरेश जी के साथ मैं इधर महाराज जी के पास पहले पहल आया। महाराज जी ने मुझे देख कर पूछा कि क्या तुम रोटी बनाना जानते हो तो मैंने सोचा कि यह तो औरतों का काम है।

श्री स्वामी बालानन्द जी ने कहा था कि मेरे एक शिष्य जो मुझे बहुत मानते हैं लुधियाना में हैं वहाँ भी तुम जा सकते हो और रह भी सकते हो। वहाँ उनकी कपड़ा की फैक्ट्री है। थोड़ा यह भी इच्छा थी कि वहाँ भी जाकर देख

लें। यहां से महाराज जी ने हरीराम मास्टर के साथ मुझे लुधियाना भेजा। लुधियाना में मैं छः माह ठहरा। लुधियाना में श्री स्वामी बालानन्द जी का आश्रम था। उसके शिष्य उन्हें बहुत मानते थे। वहाँ खान पान के कारण स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। महाराज जी को अपना सब दुख चिट्ठी में लिखा तो उन्होंने लिखा इधर चले आओ। मैंने महाराज जी को फिर लिख दिया। सोचता हूँ कि इधर और थोड़े दिन देख लूँ। कुछ समय बाद मैं वहाँ से दिल्ली आ गया। दिल्ली से हरिद्वार के लिये ट्रेन में बैठ गया। उसके बाद और भी बुरा हाल हो गया ट्रेन में सब सामान भी चोरी हो गया। हरिद्वार पहुंचकर मैं वशिष्ठ गुहा आश्रम के लिये पैदल चल दिया। मार्ग में किसी ने बोला इस अन्न क्षेत्र में रोटी देते हैं। मेरे पास तो अब कोई बर्तन भी नहीं था। रोटी मेरे हाथ में दी गयी और उसी पर दाल, सब्जी डाल दी गयीं। मैं खाने जा ही रहा था कि एक बन्दर उसे छीन ले गया। फिर रास्ते में एक लड़का मिला। उसने चार आने पैसे मुझे दिये। उसी की मूंगफली आदि खाकर हम चल पड़े और फिर ऋषिकेश तक पैदल आ गये। ऋषिकेश में केरल के एक भास्कर जी मिले, वे मोटर कम्पनी में हेड मैकेनिक थे उन्होंने मुझसे कहा जाकर पहले नहा लो। मैं नहाकर आया तो मुझे सोने के लिये चारपाई दी और खाने के लिए रोटी मंगवायी। मुझसे कहा 'सुबह चले जाना'। मैं सुबह बोला 'पैदल चला जाऊंगा लेकिन मुझे कुछ रुपया उधार दे दें। उन्होंने चार पांच रुपये दे दिये। मैंने सोचा कि महाराज जी के पास ऐसे कैसे जायेंगे। कुछ लेकर जायें तो ठीक रहेगा फिर मैंने बादाम ले लिये। कुछ पैसा बचा तो चाय की एक दुकान पर रास्ते में पकौड़ा लेने के लिये रुक गया, सोचा था कि रास्ते में खायेंगे। उतने में एक लगूर आकर बादाम लेकर दुकान के ऊपर चढ़ गया। मैं रोने-रोने को हो गया। दुकान की छत पर किसी तरह चढ़ कर देखा तो वहाँ कुछ भी नहीं मिला। दो चार बादाम इधर उधर पड़े थे। मैं सोचता रहा कि खाली हाथ कैसे जाऊंगा। खैर चलता रहा और इधर आश्रम में शाम से कुछ पहले पहुंच गया। उन दिनों इधर हरि नाम का एक ब्रह्मचारी था जो वहीं खड़ा था। मैंने महाराज जी के पास जाकर सादर प्रणाम किया। महाराज जी उस वक्त ध्यान में थे। ध्यान भंग हुआ तो मुझे देखकर उन्होंने कहा अरे ऐसे कैसे हो गया। फिर हरि को बुलाकर पूछा 'खाना







बोला ही था कि यह आवाज कहाँ से आयी। उन दिनों बाथरूम से आगे एक बेर का बड़ा पेड़ था देखा उसी के नीचे एक बाघ बैठा हुआ था। उस दिन हम दोनों ऊपर कामधेनु गुफा में आकर दिन भर बैठे रहे शाम को दुबारा गये तो वहाँ कुछ भी नहीं था। बाघ जा चुका था। बाघ जब इधर बोलते थे तो उससे जंगल हिल जाते थे। अब वह आवाज नहीं सुनाई देती है हालांकि बाघ है अभी भी। फिर कभी न बाघ से डरे और न किसी से, लेकिन उस समय के एक लड़के की उम्र समझ लीजिये, उस समय की उसकी हिम्मत को समझ लेना बड़ा मुश्किल है।

दूसरे दिन जब कालिकानन्द स्वामी जी आये तो उनसे सूरजमणि दस रुपये लेकर चला गया। कालिकानन्द स्वामी भी चले गये। रामानन्द स्वामी कहीं और रहते थे दिन में आते थे, खिचड़ी बनाते थे जिसमें खूब घी डालते थे। उन दिनों घी बहुत सस्ता था।

जो चौकीदार ऊपर स्कूल में रहते थे वह भी डर के मारे यहाँ नहीं आते थे। मैं अकेले ही रहता था। गंगा जी जाने तक कोई रास्ता नहीं था सब तरफ जंगल ही जंगल था। बस एक केले का पेड़ था। लालटेन भी एक ही थी रात में काम करके रख देते थे। हमने गुफा में सोना शुरू कर दिया, दरवाजे में अन्दर से कुण्डी थी नहीं तो वहाँ कनस्टर लगा देते थे। कि अगर बाघ आकर धक्का देगा तो कनस्टर गिर जायेगा और उसकी आवाज से बाघ भाग जायेगा। एक दिन मैंने अपनी माता जी को स्वप्न में देखा कि उन्होंने गुरु महाराज जी को कुछ अपशब्द कहे। मैंने माताजी से रूष्ट हो कर कुछ कहा। फिर गुरु महाराज जी को स्वप्न में देखा, कभी जंगल में, कभी बेल में, कभी ओखली में, मूसल में, सब में गुरु महाराज जी दिखायी दिये। वह सारे दृश्य अभी भी हमें याद हैं। स्वप्न की बातें हैं बस उसी के बाद से मेरा सारा डर चला गया था।

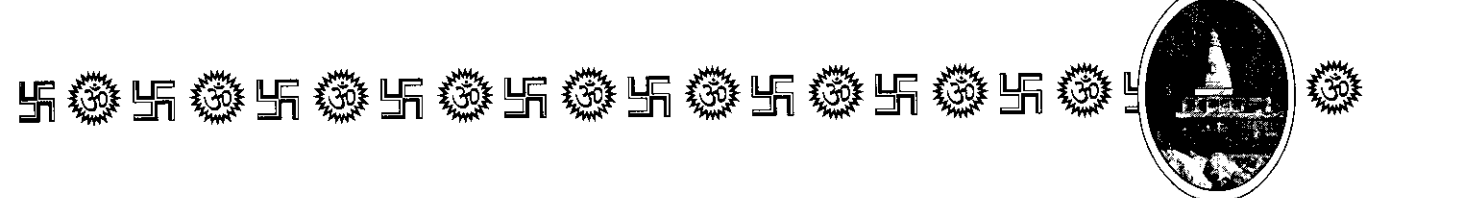
सन् १९५६ में महाराज जी लखनऊ से लौट आने के पश्चात् पं. रामसरन रयाल को बुलाकर हवन कराके हमको ब्रह्मचर्य दीक्षा दिया और नाम आत्मचैतन्य रखा। वर्ष १९५८ में गुरु महाराज जी के साथ हम दक्षिण यात्रा में साथ-साथ थे तभी केरल में ओंकार आश्रम की प्रतिष्ठा देशमगल में

महाराज जी के कर कमलों से हुयी उसके बाद महाराज जी ने श्री रामकृष्ण मिशन के आश्रमों में भ्रमण किया। पुल्लाट्ट वैद्य नारायण जो महाराज जी के पहले से भक्त थे, के यहाँ जा कर ठहरे। वहाँ सुबह के समय हमको बुलाकर बोला तुम अपनी माता जी को मिलकर आओ और १०० रु. भी दिये। उनके लिये अच्छी धोती लेना बाकी पैसे से उनको नमस्कार करके आना और हम यहाँ से चेड़.गन्नूर महादेव मन्दिर जायेंगे वहाँ आकर मिलना। वहाँ यदि न मिले तो हरिपाट्ट श्री रामकृष्ण मिशन में मिलना।

हमको साधुओं का पैसा गृहस्थ को देना अच्छा नहीं लगता था। मेरे साथ चन्द्रन नाम का मिलट्री का एक आदमी था। मैंने उनके सामने महाराज का दिया हुआ १०० रु. पेट्टी में रखकर आ गया। महाराज जी से चन्द्रन ने कहा कि आत्मचैतन्य पैसे लेकर नहीं गया। क्यों कि महाराज ने कहा था कि (पैसे के बारे में) किसी से न बोलना। जब मैं घर में आया तो श्री स्वामी बालानन्द जी का हमारे घर में दुर्गा मन्दिर में भागवत का सप्ताह (पाठ) चल रहा था। मेरे घर पहुंचने पर मुझे माता जी मिलने आयीं। मुझे माता जी ने मरा समझ लिया था।

मैं माता जी को लेकर महाराज जी का दर्शन कराने चेड़.गन्नूर महादेव मन्दिर गया तो पता चला कि महाराज हरिपाट्ट श्री रामकृष्ण मिशन चले गये। मैंने माता जी को किसी आदमी के साथ घर भेज दिया और मैं हरिपाट्ट चला गया। हरिपाट्ट मैं गया तो महाराज जी सुब्रह्मण्यम क्षेत्र में गये हुये थे। महाराज जी लौटकर आये तो वहाँ के ब्रह्मचारी से पूछा कि वह आ गया। ब्रह्मचारी बोला आ गया। महाराज जी ने पूछा खाना खा लिया। ब्रह्मचारी ने कहा कुछ नहीं। बोला रात में सो गया तीन बजे रात को उठाकर महाराज जी ने हमें बुलाया। तुम अपने मां के पास गया? मैंने बोला जी महाराज। महाराज जी बोले मैंने जैसा बोला वैसा तुमने किया। मैंने बोला जी महाराज। महाराज जी ने कहा रुपया तुमने दिया। मैंने कहा जी। कितने दिये? मैंने कहा ५ रुपया। तो माताजी ने क्या बोला हमने कहा माताजी आपको मिलने चेड़.गन्नूर महादेव मन्दिर तक आया था आप नहीं मिले इसलिये वह घर चली गयी। गुरु महाराज बोले मैं ३ दिन हरिपाट्ट में हूँ, तुम माता जी को बुलाकर इधर





लाओ। हम सीधा घर गया और मैं, माताजी और उनके साथी को लेकर सीधा महाराज जी के पास आ गया। गुरु महाराज वहां के प्रेसीडेन्ट चित्सुखानन्द जी महाराज और वाइस प्रेसीडेन्ट चित्रभासानन्द जी महाराज तीनों बैठकर हमको बोला आश्रम के पीछे जाओ। माता जी से सब बात

पूछा। माता जी ने शायद महाराज जी के साथ मुझे आने को मना कर दिया। हमको बुलाकर महाराज जी ने माता जी की सेवा करने को बोला और कहा माताजी के साथ घर जाओ और उनकी सेवा करो। प्रेसीडेन्ट स्वामी जी महाराज ने कहा इनको ब्रह्मचर्य दीक्षा देकर घर क्यों भेज रहे हो। महाराज जी ने किसी की सुनी नहीं। हमने माता जी को आकर डरा दिया कि मैं घर नहीं रहूंगा और कहीं चला जाऊंगा। आश्रम में हलचल हो गयी और सब लोगो ने माता जी को समझाना शुरू कर दिया। तब माता जी ने मजबूरन आकर महाराज जी से कहा आपके पास रहने में हमें कोई एतराज नहीं। तब महाराज जी बोले अच्छा मैं ले जाऊंगा। उसी समय मैं नहाने चला गया था गुरु महाराज ने स्वामी बल्लभानन्द जी को हमारे पास भेजा कि



आश्रम में भण्डारे का एक दृश्य

उसको जल्दी लाओ। हम आ गया। मेरे से महाराज बोला। जो मां से प्रेम नहीं करेगा वह भगवान से प्रेम क्या करेगा। तुम्हारी मां तुम्हारा नाम भी नहीं लेतीं स्वामी, स्वामी बोलती हैं। तुम जल्दी उनको मन्दिरों का दर्शन करा कर नाश्ता आदि करा कर गाड़ी पर बिठा कर आ जाओ। इसके बाद गुरु महाराज जी ने हमको घर जाने को कभी नहीं बोला। लौटकर गुफा आने के कुछ दिन बाद स्वामी निर्वेदानन्द, स्वामी रघुवीरानन्द, स्वामी शाम्भवानन्द, स्वामी रामेश्वरानन्द,

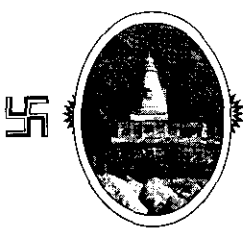
को सन्यास दिया और उसके कुछ दिन बाद कई लोगों को नैष्ठिक ब्रह्मचारी का कपड़ा दिया था। हमने उपरोक्त सन्यास दीक्षा के समय सन्यास लेना मना कर दिया था। कुछ दिन बाद स्वामी परेशानन्द जी का पत्र महाराज जी के पास आया उन्हें सन्यास मंत्र के विषय में कुछ संशय था जिसके बारे में पूछा था। गुरु महाराज जी ने हमको बुलाया और बोला यह पढ़ो। हमने पढ़ लिया। मैंने सोचा मैं ब्रह्मचारी हूँ महाराज जी ने मुझसे यह क्यों पढ़ाया गुरु महाराज जी ऊपर कमरों से गद्दी के पास आये। आनन्दकृष्ण जी वहां बैठे हुये थे। उनसे महाराज जी ने बोला इनको "चैतन्यानन्द" जी बोलो। इस बारे में किसी को भी पता नहीं है। गुरु महाराज की महिमा गुरु महाराज जाने।

एक बार गुरु महाराज को जाकर हमने प्रणाम किया। उस समय मैं महाराज जी द्वारा दिया हुआ एक तुलसी माला जिसमें कृष्ण भगवान का सोने का पेंडेन्ट लगा हुआ था, पहने था। स्वामी रघुवीरानन्द जी गुरु महाराज जी के पास बैठे थे। गुरु महाराज ने

बोला कि 'मालया शोभते' और इसे स्वामी रघुवीरानन्द जी से पूरा करने को कहा। उन्होंने कहा कल पूरा करके लायेंगे और दूसरे दिन लिख कर लाये। "मालया शोभते गात्रं" इतने में महाराज जी ने बोला लिखो:

"मालया शोभते समयक् ब्रह्मचारी व्रतस्थिता,  
आत्मचैतन्यनामाख्या स्वात्माराम परायणः।।"

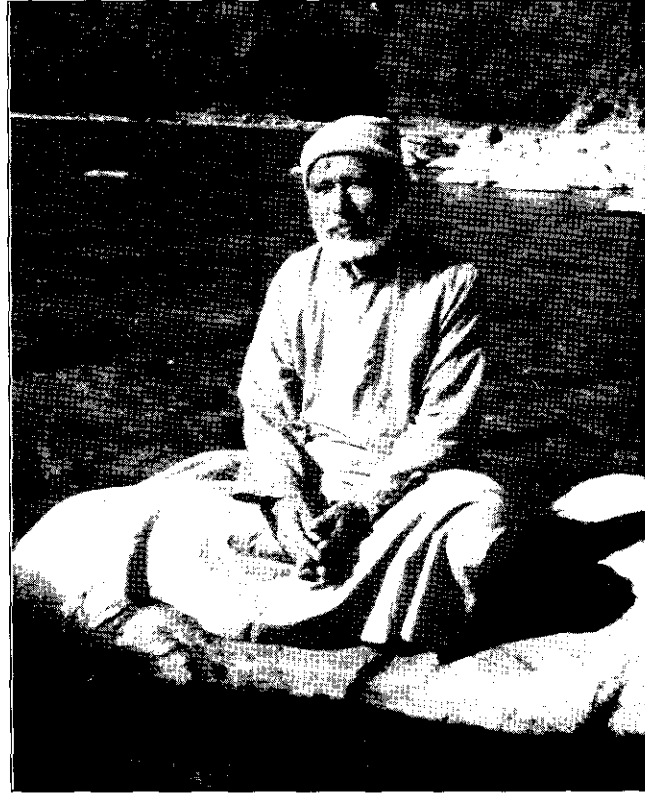
□□



## “गुरु-स्मृति”

— स्वामी पुरहरानन्द

मनुष्य जन्म, मुक्ति की इच्छा, और महापुरुषों का संग श्री श्री परमेश्वर की कृपा से मिलता है। साक्षात् श्री भगवान ही गुरु—रूप में साधक को मिलता है। ईश्वर की कृपा से मुझको श्री पुरुषोत्तमानन्द जी के परमभक्त थी शिवाधार सिंह (प्रोफेसर) से मिलने का सौभाग्य हुआ। उन्होंने ही सर्व प्रथम मुझको बताया कि वशिष्ठ गुफा में स्थित श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी ही तुम्हें मन्त्र दीक्षा दे सकते हैं। जौनपुर से विदाई लेकर एक दिन मध्याह्न के करीब एक बजे वशिष्ठ गुफा में पहुँचने पर श्री स्वामी रामानन्द जी सामने बैठे दिखे, उन्होंने मुझसे कहा, श्री गुरुदेव अभी आराम में हैं। करीब १० मिनट बाद गुरु महाराज जी उठकर अपने आसन पर बैठ गये। मैंने महाराज जी को निकट जाकर प्रणाम किया। महाराज जी ने पूछा, 'कहाँ से आ रहे हो'। महाराज जी ने मेरे लिए भोजन का प्रबन्ध करवाया। मैं श्री स्वामी सेवानन्द जी के साथ आश्रम की सेवा में लग गया। दस-बारह दिनों के बाद एक दिन सायं चार बजे महाराज जी ने मुझको आदेश दिया, 'स्नान करके धूप, दीप, पुष्प तथा जलपान थाली में लेकर आओ'। ब्रह्मचारी—आत्मचैतन्य जी जो सामने खड़े थे, समझ गये कि महाराज जी मुझको मन्त्र दीक्षा से कृतार्थ करेंगे। उन्होंने ही शीघ्र थाली में चन्दन, धूप, दीप, पुष्प व फल रख दिया। श्री गुरुदेव ने कृपा करके उसी समय मुझे दीक्षा मात्र दे दिया। उन्होंने ही मुझे आसन करके बैठना भी सिखा दिया।



स्वामी पुरहरानन्द जी

एक दिन मैं गीता का तीसरा अध्याय पढ़ रहा था मेरा उच्चारण अशुद्ध था। श्री महाराज जी ने मेरे पास आकर खूब प्रेम से कहा, 'अच्छी तरह से पढ़ने का अभ्यास करो, तब तुम्हारा पढ़ना शुद्ध हो जायेगा। मैं श्री गुरु महाराज जी से बोलने में बहुत संकोच करता था। एक बार मैं मलेरिया बुखार में बेहोश होकर पड़ा था, श्री गुरु महाराज जी आकर मेरे पास बैठे, और एक हाथ मेरे सिर पर रख कर, दूसरे हाथ से मेरा दायाँ हाथ पकड़कर 'विष्णु—सहस्र नाम' पाठ करने लगे। कुछ देर के बाद मुझे होश आया और फिर मुझे कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ। फिर पन्द्रह—बीस दिनों के बाद

मुझे मलेरिया बुखार ने पकड़ लिया तो श्री महाराज जी ने मुझे कनखल राम कृष्ण मिशन सेवा आश्रम में भेज कर इलाज करवाया। वहाँ से रोग मुक्त होकर गुफा में आया और आश्रम सेवा में लग गया। कुछ दिनों के बाद महाराज जी ने हम लोगों को ब्रह्मचर्य मंत्र की दीक्षा दी। अन्य गुरु भाइयों के समक्ष गुरु महाराज ने एक दिन मुझसे पूछा, 'तुम्हें क्या चाहिए' मैंने उत्तर दिया कि मुझे 'सन्यास' चाहिए। महाराज जी ने मुझसे 'सन्यास' का अर्थ पूछा। स्थूल वृद्धि होने पर भी अचानक मुंह से निकल गया कि सन्यास का तात्पर्य सर्वत्याग से है। यद्यपि मैं इस शब्द का अर्थ बताने योग्य कदापि नहीं था। स्पष्ट समझने में आया कि श्री महाराज जी ने ही मेरे अन्तःकरण से ऐसा अर्थ निकलवा दिया। उस समय अन्य बुद्धिमान शिष्य मुझको मोटा बुद्धि





वाला कहकर घृणा करते थे। श्री गुरु महाराज जी ने ही कृपा करके अन्य गुरु भाइयों के सामने स्थान देने के लिए मुख से सन्यास का ऐसा अर्थ निकलवा दिया और साथ ही साथ खुद भी कहा, 'देखो, इसका अन्तःकरण कितना शुद्ध है, कैसी शुद्धता से जवाब दिया'।

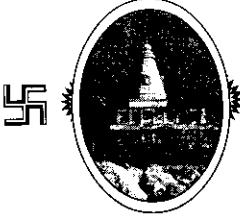
इस घटना से मुझे जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, श्री तोटकाचार्य के ऊपर कृपा करने की घटना याद आयी और श्री श्री महाराज जी की कृपा से हम विह्वल हो गये।

एक दिन प्रातः आठ बजे एक सिद्ध पुरुष गुफा में आये। पूरे दिन जेट की कड़ी धूप में गंगा के किनारे बैठे रहे। सायं समय जब वे जाने लगे तब महाराज जी ने मुझे (उमेश चैतन्य) तथा मणि चैतन्य को कुछ पैसा देकर कहा, 'इन सिद्ध पुरुष के चरण पकड़ो और आशिर्वाद लो। हम दोनों दौड़ के उनके पास गये और पांव छूने लगे तो उल्टे वे हमारे पांव पकड़ने लगे। ऐन केन प्रकारेण हमने उनका चरण-स्पर्श किया एवं आशिर्वाद प्राप्त किया एवं आशिर्वाद मांगा। उन्होंने कहा, 'ईश्वर का नाम ही सबको मोक्ष देने वाला है। इसी से संसार का कल्याण होगा। ईश्वर सब कुछ है और ईश्वर के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। ईश्वर में मन लगाओ और किसी से किसी वस्तु की आशा मत रखो।' इतना कहकर उन्होंने हम लोगों द्वारा दिया गया रुपया भी नहीं छुआ और चल दिए। गुरु महाराज जी जो व्यक्ति जिस कार्य के योग्य होता था, उसे वैसी ही प्रेरणा प्रदान करते थे। एक दिन मैं गाय सेवा के लिए घास पत्ती काट रहा था। उसी समय महाराज जी ने मेरे पास आकर घास दिखाते हुए कहा, "भाई उमेश इसकी काटो, गाय के लिए यह कितना सुन्दर है। गाय सेवा करना साक्षात्-ईश्वर की ही सेवा है।' एक बार आश्रम की सेवा में मैं बड़ा-बड़ा पत्थर उठा रहा था। महाराज जी ने मुझे देखकर दूसरों से मेरी तरफ उंगली दिखाकर कहा, 'यह हनुमान में हनुमान हैं' मुझे श्री महाराज जी के मुख से 'सर्व खल विंद ब्रह्मा, ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या, सत्यं शिवं सुन्दरम्, जो इन्द्रियों, चित्त अहंकार को आत्मा में लीन करके समाधि में स्थित होता है वे ही संसार-बन्धन से मुक्त होता है, इत्यादि वाक्य सुनने का सौभाग्य मिला।' एक दिन वेदान्त की व्याख्या करते समय महाराज जी ने कहा, 'हृदय में स्थित आत्मा को ढूँढो, तब मोक्ष के अधिकारी बनोगे।'

एक समय मैंने महाराज जी से वृन्दावन धाम जाने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा, 'यही वृन्दावन धाम है। आँख मूँदकर यही ध्यान में बैठो तो तुमको साक्षात् विष्णु भगवान और गोपियों का अनुभव हो जायेगा। सभी वस्तुओं में भगवान श्री कृष्ण है। तुम सामने जो कुछ देख रहे हो, वह सभी श्री कृष्ण ही है। किन्तु दुर्भाग्यवश उस समय महाराज जी के इस महावाक्य को न समझकर मैं वृन्दावन जाने का आग्रह करता रहा। कुछ दिनों के बाद महाराज जी के साथ दिल्ली गया तो वहाँ से वृन्दावन जाने हेतु एक दिन की अनुमति महाराज जी ने दिया। इस वृन्दावन यात्रा में हमको कोई आनन्द नहीं मिला। लौटकर आने पर गुरु महाराज ने कहा, 'वशिष्ट गुफा में सब कुछ है गुफा छोड़कर कहीं मत जाना, वहीं सब कुछ है।' दिल्ली से हम लोग महाराज जी के साथ इलाहाबाद गये और पवित्र त्रिवेणी में स्नान करने का सौभाग्य मिला। स्नान करने के समय महाराज जी ने कहा, 'हम सब ब्रह्म रस रूपी त्रिवेणी में स्नान कर रहे हैं जो त्रिविध पापों को नष्ट कर देती है। माधव को हृदय में रखकर जो त्रिवेणी में स्नान करता है उनको पुनः संसार में आना नहीं पड़ेगा इलाहाबाद से महाराज जी के साथ हम लोग लखनऊ भी गये।

सन् १९६० (उन्नीस सौ साठ) कार्तिक पूर्णिमा से दो दिन पूर्व मैं गुफा से ऊपर जा रहा था तो महाराज जी ने मुझेसे पूछा, 'क्या तुमको सन्यास लेने की इच्छा है।' मेरे मुख से अचानक निकला कि मेरी इच्छा कुछ नहीं आपकी इच्छा पर ही मेरी इच्छा निर्भर है। उसी समय महाराज जी मुझे अपने कमरे में ले गये और नया कपड़ा देकर बोले इसे धोकर गेरुआ रंग चढ़ा लो। दूसरे दिन पण्डित राम शरण जी को आदेश दिया कि इन लोगों को (मेरा व गोपालदास) उपवास व शास्त्र विधि से मुण्डन व सोलह संस्कार व्रत, जप, पिण्डदान आदि सम्पूर्ण क्रियाएं कराई जाय तथा गायत्री जप व रात्रि जागरण कराया जाय, तब दूसरे दिन वेद-विहित विधि से प्रातः हमें सन्यास की दीक्षा दी गयी।

ऐसी ही श्री श्री महाराज जी की अहेतुक कृपा से वशिष्ट गुफा वास सद्भाव में जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य मिला। हमारा शास्त्र कहता है संसार में सब का ऋण मिट सकता है लेकिन गुरु कृपा का ऋण अऋण ही



रहता है। मुझको केवल गुरु महाराज जी की कृपा का ही भरोसा है।

एक बार गुरु महाराज ने मुझसे कहा 'वसिष्ठ गुहा छोड़कर मत जाना। मैं बहुत जगह घूमा हूँ, किन्तु साधन-भजन के लिए ऐसी जगह कहीं नहीं मिलेगी।'

गुरु महाराज जी कहा करते थे कि छल रहित सेवा करनी चाहिए। गौ माता की सेवा पर उनका विशेष ध्यान था। एक बार ऐसे ही उन्होंने मुझसे कहा 'उमेश! दराती (घास काटने का औजार) लेकर मेरे साथ चलो।' उनके साथ ऊपर सड़क पर गया तो एक जगह अच्छी सी हरी घास दिखायी पड़ी, यद्यपि पास में उसी तरह की और घास भी थी परन्तु उन्होंने साफ सुथरी घास काटने को कहा जहाँ पर थोड़ी कठिनाई थी। साथ ही साथ यह भी कहा 'पशुओं से भी निष्कपट प्रेम करना चाहिए।'

सब जीवों से निश्छल एवं निष्कपट प्रेम, 'हम सबके लिए उनका सूत्र वाक्य था। वही निष्कपट हंसी हमेशा उनके चेहरे पर झलकती रहती थी। यह अनुभव, उन सभी का था जो उनसे मिले थे।

गुरु महाराज की कृपा है महाराज साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं किन्तु मोह एवं अज्ञान के परदे के कारण उन्हें जान नहीं पाया। उनका स्नेह इतना था कि एक दिन हंसी-हंसी में उन्होंने अपना दाहिना हाथ हमारे सामने फैला दिया और कहा 'मेरा हाथ देखकर कुछ बताओ।' मैं अनाड़ी भला ऐसे प्रभु का हाथ कैसे देखता? उनकी उन्मुक्त हंसी देखता रह गया उन्होंने मेरे अन्दर की भावना को जान कर यह लीला की। वास्तव में मेरी आदत ज्योतिषियों के सामने हाथ फैलाने की थी जिसे अन्तर्यामी गुरु ने जान लिया।

□□

## गुरुवन्दना

— सुपर्णा वर्मा

वन्दना करो गुरु की, अर्चना करो,  
मन से पाप दूर जाय, यह प्रार्थना करो,  
प्रेम से मिल कर रहो, तुम, द्वेष न धरो,  
स्नेह गीत की ध्वनि से, श्वास तुम भरो,  
वन्दना करो गुरु की, अर्चना करो,  
सम्बन्ध छूटते रहेंगे, मन धीर तुम धरो,  
सुख क्षणिक है, दुख के जैसा, आस न करो,

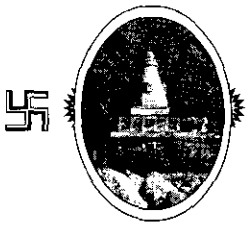
वन्दना करो गुरु की, अर्चना करो,  
सम्बन्ध छूटते रहेंगे, मन धीर तुम धरो,  
सुख क्षणिक है, दुख के जैसा, आस न करो,

वन्दना करो गुरु की, अर्चना करो,  
गुरु ही प्रेम, गुरु ही पूजा, गुरु ध्यान तुम करो,  
श्लोक श्रवण करो नित, मन भावना करो,  
सूक्व की ध्वनि से, जीवन मनोरम करो  
वन्दना करो गुरु की, अर्चना करो  
जीवन प्रकाशित गुरु ज्ञान से हो, यह याचना करो  
गुरु चरण शीश नित झुकाकर प्रार्थना करो  
गुरु आश्रय छौंव जैसा, गुरु आश्रय करो

वन्दना करो







हैं। उन वृद्ध सन्त के श्वेत लम्बे बाल और दाढ़ी लहरा रही थी। प्राचीन काल के ऋषियों की भाँति उनका चेहरा दिव्य कान्ति से दमक रहा था। उनके कान्तिपूर्ण चेहरे पर एक दिव्य मुस्कान विराजमान थी।

जैसे ही पथिक हाथ जोड़े प्रणाम की मुद्रा में उनके निकट गया, उन सन्त की मधुर मुस्कान एक आनन्दपूर्ण मुक्त हंसी में परिवर्तित हो गयी। एक बालक की भाँति मुक्त हृदय से हँसते-हँसते उन्होंने अपने हाथ से कोमल संकेत देकर आगन्तुक से बैठ जाने को कहा। महाराज अपने निकट ही पड़े हुए पत्रों, कागजों और पुस्तकों के बीच कुछ ढूँढते हुये से प्रतीत हुये। फिर उन्होंने एक बड़ा सा पिकचर पोस्ट-कार्ड निकाला जो सम्भवतः उसी दिन की डाक से उन्हें प्राप्त हुआ था। महाराज अभी भी हँस रहे थे और हँसते-हँसते ही उन्होंने कार्ड को हवा में लहराते हुये आगन्तुक को देते हुये कहा, 'क्या तुम इस स्थान और देश को जानते हो?'

एक झलक में ही पथिक ने पहचान लिया कि यह स्विटजरलैंड में स्थित ज्यूरिख है। उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उस कार्ड में ज्यूरिख के ठीक उसी स्थान का चित्र अंकित था जहाँ उसका जन्म हुआ था। पथिक अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक विचार करने लगा कि स्वामीजी महाराज को उसकी राष्ट्रीयता के बारे में कैसे पता चला? उन्होंने क्यों विशेष रूप से इस कार्ड को उसे ही दिखाया?

इसके बाद उन महात्मा ने आत्मीयतापूर्वक पथिक की कुशलता पूछी और उनके गुरु आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की।

इस सन्त की प्रभावी उपस्थिति से वहाँ का वातावरण आध्यात्मिक रूप से अत्यन्त आवेशित था जिसमें युवा साधक ने अद्भुत रूप से अपना आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठा हुआ अनुभव किया। उसको इस ऋषि-आश्रम में ठहरने और भविष्य में भी जब भी वह आना चाहे निःसंकोच वहाँ प्रवास हेतु आने की अनुमति मिल गयी। अतः कुछ वर्षों तक वह वसिष्ठ गुहा जाता रहा। जब भी वह हिमालय के इस भाग में होता तो वहाँ अवश्य जाता था। पुरुषोत्तमानन्दजी महाराज की संगति सचमुच धन्य कर देने वाली थी।

स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी महाराज अत्यन्त स्नेही किन्तु दृढ़ थे। इसमें कोई शंका नहीं थी कि वह सदैव ईश्वर के साम्राज्य में ही विचरण करते थे। ईश्वर पर निर्भरता पूर्ण एकान्तवास में उन्होंने अपने वैराग्य और तपस्या के फलस्वरूप

जीवन को गहराई से देखा। उनके अनुयायियों द्वारा अनेक असाधारण घटनायें उनके बारे में बताई जाती हैं।

किन्तु एक बात तो निश्चित थी कि महाराजजी की सबसे बड़ी सिद्धि थी कि उन्होंने अपने चारों ओर एक अत्यन्त प्रबल आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न कर लिया था।

स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी की अंग्रेजी की हस्त-लिपि उनके त्वरित और तीक्ष्ण विवेक का सूचक थी। उन्होंने इस अतीत यात्रा के वर्णनकर्ता को कृपापूर्वक एक पत्र लिखा। उस पत्र की विशेषता यह थी कि प्रत्येक दूसरे या तीसरे शब्द के लिये वह उनके प्रथम दो या तीन अक्षर तो स्पष्ट रूप से लिखते थे और शेष अक्षरों के स्थान पर बस एक छोटी या लम्बी लाइन खींच देते थे जिसका अन्तिम छोर अर्थानुसार ऊपर या नीचे की ओर जाता था। पत्र पढ़ने वाले से यह अपेक्षित था कि वह सही ढंग से पढ़े। उनके हस्त-लेखन का अध्ययन करना अत्यन्त रोचक होता था।

वसिष्ठ गुहा में नव निर्मित कमरों की छत पर प्रतिदिन दोपहर के बाद लगभग तीन बजे शरद ऋतु की चमकदार धूप में योग-वासिष्ठ का पाठ होता था। इस शास्त्र में ऋषि वसिष्ठ श्रीराम को उपदेश देते हैं जिनमें न केवल शिष्य की उच्चमत योग्यता थी अपितु वह स्वयं ईश्वर भी थे। यह शास्त्र आध्यात्मिक मार्ग पर पदार्पण करने वाले प्रारम्भिक स्तर के साधकों के लिये नहीं है। यह केवल उनके लिये है जो आत्म-शुद्धि के संयमों से गुजर चुके हैं।

एक दिन अपराह्न में महाराज ने अचानक ही योग-वासिष्ठ का पाठ रुकवा दिया और एक ब्रह्मचारी को आदेश दिया, 'हे, जल्दी से मिट्टी के तेल का एक लैम्प जलाकर ले आओ।' 'अब स्वामी अचम्भित होकर विचार करने लगे कि इस लैम्प का क्या होगा जबकि सूर्य चमक रहा है? बिना कुछ बोले शिष्य ने आदेश का पालन किया और जलते हुए लैम्प को एक स्टूल पर पुस्तक और पाठकर्ता के निकट रख दिया। पाठ पुनः प्रारम्भ हो गया। स्वामीजी गहराई से इस पर विचार करने लगे। पाठ में थोड़ी देर का विराम लग जाने से हर कोई और अधिक सजग हो गया था।

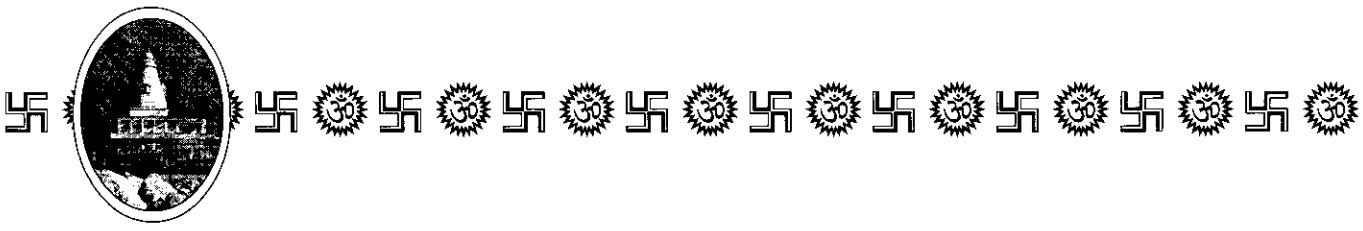
अन्ततः मन में यह विचार आया- 'प्रकाश, हाँ और अधिक प्रकाश की ही तो आवश्यकता है जिससे वनवासी वैरागी वह समझ सकें जो ऋषि उसे समझाना चाहते हैं।'

□□









## मेरे सद्गुरु

— भागीरथ लाल



सेवक सन् १९४३ ई. में २७ वर्ष की अवस्था में सन्निपात रोग से मुक्ति पाकर यह विचार करने लगा था कि जीवन में सादगी और ईश्वर-प्रेम आवश्यक है क्योंकि यह शरीर क्षणभंगुर है और जीवन के इरादे अनेक हैं जो चाहे पूर्ण हों या अपूर्ण ही रह जायें। ऐसे भटकते प्राणी को, कतिपय महात्माओं के, जो गणेशगंज लखनऊ में आये हुये मानस-सम्मेलन में प्रवचन करते थे, सम्पर्क में आने का अवसर मिला परन्तु किसी को समर्पण करने का भाव न उठा। इस प्रकार भटकते हुए जन को सन् १९४६ ई. में उनके एक गृहस्थ भक्त श्री हंसराज जी नागर द्वारा महाराज जी के दर्शन लाभ का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथम साक्षात्कार में इतना मूक-आकर्षण हुआ कि आज तक उनके चरणों से अलग होने की स्वप्न में भी इच्छा न हुई। उस दिन कोई

बात न हुई थी— एकान्त में बैठे हुये एक कमरे में महाराज जी के चरणों में प्रणाम किया और पूछने पर अपना नाम और व्यवसाय बताकर आदेशानुसार वहीं लगभग एक घण्टा मौन बैठने पर जिस आनन्द का अनुभव हुआ वह वर्णनातीत है। न जाने उनकी उपस्थिति में क्या जादू हुआ कि मैं अवाक् निर्विचार, शान्त, स्तब्ध और गहरी ध्यानास्थिति में बैठा रहा और विचित्र आनन्द का अनुभव किया जो आज भी भुलाया न जा सका। वह स्थिति उनके “ओम्” शब्द के उच्चारण से टूटी और इशारे से पाये आदेशानुसार चलते समय यह सुना कि “Silence is the best mode of conversation” मौन ही संवाद का सर्वोत्तम ढंग है— जब-जब उनकी उपस्थिति में बैठने का शुभ अवसर प्राप्त होता तो मौन होकर एक आसन में सीधे बैठने की आदत सी बन गई जैसे इसका प्रशिक्षण दिया गया हो। महाराज जी थोड़े ही दिनों में शुक्लाघाट पर ठहरने गोमती किनारे चले गये। चलते समय जब मैंने पूछा कि मैं तो केवल ६.३० या १० बजे रात्रि में ही दर्शन हेतु वहाँ उपस्थित हो सकता हूँ— तो उत्तर था कि वही सत्संग का अच्छा समय है। कितनी विशाल-हृदयता थी। मैं इतना आकृष्ट हो चुका था कि सुनसान रास्ते से मेडिकल कालेज के अन्दर से जब मैं शुक्लाघाट पहुँचा तो कहाँ वे ठहरे थे— यह न मालूम था। अतएव थोड़ी देर प्रतीक्षा कर एक दिन वापस आ गया और दूसरे दिन पुनः उतनी ही रात्रि को १० बजे पहुँचा तो पहले ही दिन की दशा थी— परन्तु मैंने वही ठहर कर रात बिताकर उनसे मिलने की सोची। इस भाव से अपनी साइकिल को ताला लगाकर वहीं गोमती घाट की एक बुर्जी पर बैठ गया— नीचे हर हर शब्द करती गोमती माँ बह रही थीं और एकान्तवास में क्या आनन्द होता है इसका कुछ-कुछ भान कराती थीं। इतने में पूर्व की ओर स्थित मंदिर का किवाड़ खटका और खड़ाऊँ के शब्द के साथ एक मूर्ति बाहर निकली—वह ही महाराज जी थीं। मैं धीरे-धीरे उधर बढ़ा और अपनी टार्च का प्रकाश फेंक कर बताया कि मैं कौन हूँ। महाराज जी ने इशारे से कमरे के अन्दर आकर दीपक जलाने को कहा और ऐसा करके मैं



चुपचाप महाराज जी की चौकी के पास बैठ गया। वहाँ २ या ३ सज्जन सोये हुये थे— वे जगे नहीं। मैं महाराज जी के निकट लगभग दो या ढाई घंटे कैसे बैठा रहा कह नहीं सकता। इतना समय अनजाने ही बीत गया। मन पूर्णतया शान्त था। कोई विचार भला या बुरा नहीं उठ रहा था। महाराज जी के सूक्ष्म इशारे पर उठा, चिराग बुझाया और उसी रात को दो या ढाई बजे साइकिल से एकान्त, निर्जन स्थानों रेजीडेंसी आदि से होता गणेशगंज अपने निवास स्थान आ गया जहाँ चुपचाप दरवाजा खुलवाकर आनन्द से सो गया। उस वर्ष इसी प्रकार महाराज जी की शरण में बैठने का अवसर प्राप्त होता रहा।

### सद्गुरु का आदेश

एक बार की बात है महाराज जी के पत्र से पता लगा कि वे बद्रीनाथ यात्रा पर जाने वाले हैं। जब मैंने उन्हें अपने साथ मुझे ले चलने हेतु लिखा तो उनका स्वीकृति पत्र आ गया और मैंने मेडिकल छुट्टी ले ली और जैसे ही उन्हें इसकी सूचना दी कि इसी बीच पत्र मिला कि वे तो चल पड़े हैं पत्र में विशेषतया लिखा था कि—

‘किसी को दूसरे वर्ण के एवं आश्रम वाले की नकल नहीं करनी चाहिये। सबको अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये और अपने आश्रम में धर्मों का पालन करते हुये जीवन की सफलता प्राप्त हो सकती है।’

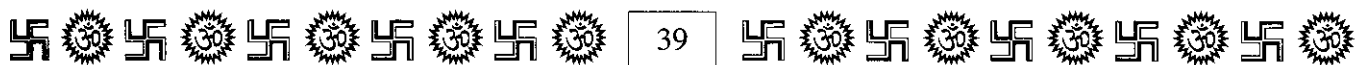
### गुरु पूर्णिमा पर गुरुपूजन

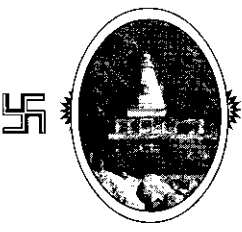
एक बार सन् १९५८ की बात है मैं जून के महीने में दिल्ली से लौटते समय केवल एक सप्ताह के लिये गुहा गया था। पहले मेरा ऐसा कोई इरादा न था। दिल्ली पहुँचकर विचार ऐसा बना। वहाँ पहुँचकर २ जुलाई को गुरु पूर्णिमा पड़ रही थी। अतएव छुट्टी बढ़ा ली परन्तु जैसे—जैसे वह दिन निकट आया चिन्ता हुई कि धनाभाव के कारण मैं उक्त अवसर पर किस प्रकार पूजा कर सकूँगा। वहाँ बहुत से लोग पहुँच रहे थे और मैं भी कहीं स्थान साफ करने या

पुष्प इकट्ठा करने इत्यादि कार्यों में लगा रहता था, पर मन उसी उधेड़ बुन में था कि यकायक घूमता फिरता मेरे नाम से पचीस रुपये का एक मनीआर्डर आ पहुँचा। फलस्वरूप वह रुपये मैंने ऋषिकेश जाते किसी ब्रह्मचारी को दिये कि पूजा की सामग्री नैवेद्य तथा कुछ वस्त्र लेते आवें। वह भी आ गया। दूसरे दिन ही गुरु पर्व था। मैं रात में सोचता रहा कि मैं महाराज जी की अलग पूजा कैसे कर सकूँगा। सम्भव है सबके साथ संकोचवश मुझे उपयुक्त समय ही न प्राप्त हो सके। प्रातः काल चार बजे ही उठकर स्नान कर लिया और सारी पूजा—सामग्री एक स्थान पर संजो कर रख ली थी कि एकाएक पाँच बजे श्री पीताम्बर जी ने जो अब स्वामी चैतन्यानन्द जी हैं मुझे बुलाया और कहा कि महाराज जी की पूजा करो जाकर। ऐसा महाराज जी का आदेश है। मैं अत्यन्त हर्षित हो उठा और अपने पूज्य पिताजी को जो एक दिन पूर्व पहुँचे थे लेकर ऊपर वाली कोठरी के द्वार पर जो गंगा जी की ओर है पहुँच गया, वहाँ गुरु महाराज प्रगट हुये, मुझे तो पूजा की कोई विधि आती न थी। या यों कहिये उस समय किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया। महाराज जी जैसा बताते गये उसी प्रकार पद प्रक्षालन, वस्त्रार्पण, चंदन लेपन, माल्यार्पण, माला, पुष्प, सुगन्धि आदि अर्पित कर आरती उतारी और चरणाभिवादन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। पिता पुत्र हम दोनों कृतार्थ हो गये।

मेरे तो बड़े से बड़े सांसारिक कष्ट भी महाराज जी की याद करते ही समाप्त हो जाते हैं। एक बार मेरे चतुर्थ पुत्र एक वर्षीय विवेक का ज्वर रात्रि में एक—एक डिग्री प्रति घण्टा बढ़ रहा था। प्रातः चार बजे वह १०४ डिग्री तक पहुँच चुका था। उन्नाव में उस समय डाक्टर के घर जाकर बुलाना था। उसे छोड़कर जाने का साहस न पड़ रहा था। जब कोई बचत का सहारा न देखा तो महाराज के हवन की भभूत पड़ी थी उसे निकाला, उसे लगाया और उसी पोटली में महाराज जी द्वारा प्रयुक्त फेरमफास की छोटी शीशी भी पड़ी थी उसकी भी दो गोली दी गई बस बुखार उतरना आरम्भ हो गया और प्रातः काल तक वह ज्वर मुक्त हो गया। ऐसा था उनकी स्मृति का प्रभाव।

□□





## श्री महाराज जी तथा मेरे कुछ संस्मरण

— सीताराम श्रीवास्तव

### गुरु दर्शन

महाराज जी जाड़े की ऋतु में जब कभी लखनऊ पधारते थे तो हमेशा गोमती के किनारे शुक्ला घाट पर ही ठहरते थे। उधर से आते जाते हुए भी मैं कभी उनके दर्शन के लिए नहीं गया किन्तु जब मेरे भाग्य उदय होने की घड़ी आ गई तो मेरे भाई साहब ने मुझे फोन द्वारा गरुघाट पम्पिंग स्टेशन पर, जहाँ पर अब मैं रहने लगा था, सूचित किया कि स्वामी जी कल सुबह आयेंगे और चार छः दिन एकान्त-वास करना चाहते हैं, अतः उनके लिए उचित प्रबन्ध कर देना। ये सन् १९५० की बात है। अगले रोज सुबह के समय मैंने देखा कि महाराज जी अपने भक्तगणों के साथ चले आ रहे हैं। मैं उनके



प्रथम दर्शन से ही बहुत प्रभावित हुआ। महाराज जी इस बार मेरे यहाँ कुछ रोज ठहरे थे। भक्त लोग स्वामी जी के दर्शन करने आते जाते रहते थे और सायंकाल कीर्तन भी होता था।

रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने कहा है :-

**‘बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता’**

मैं इसे ईश्वर की कृपा ही कहूँगा कि मेरा परिवार उसी क्षण से उनका तुच्छ सेवक हो गया। इससे यहाँ स्पष्ट होता है कि महाराज जी दीनों पर दया करने हेतु कितना कष्ट सहन करते थे।

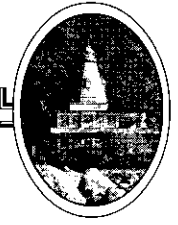
महाराज जी का हृदय बड़ा कोमल था। महाराज जी स्वयं कहते थे कि ‘मक्खन तो गर्म करने से पिघलता है लेकिन सन्त का हृदय मक्खन से भी कोमल होता है तथा दूसरों के दुःखों पर पिघल जाता है।’ ऐसे महात्मा बिरले ही पाये गये हैं।

श्री महाराज जी ने समय-समय पर व्यक्तिगत रूप से जो शिक्षाएँ दी हैं वो मैं यहाँ देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

### गुरु की महानता

एक बार मेरे भ्राता श्री माधव प्रसाद जी के मकान पर महाराज जी ठहरे हुए थे और भक्त जन महाराज जी के पास एकत्रित थे। मैं उसी मकान में दूसरे स्थान पर था। मेरे मन में यह व्याकुलता उत्पन्न हो रही थी कि मुझमें कोई साधना नहीं है, अतः मेरा क्या होगा। कुछ क्षण बाद जब मैं महाराज जी को प्रणाम करके उनके निकट बैठा तो अन्तर्यामी भगवान ने मेरी व्याकुलता को जानकर मुझसे कहा रामायण पढ़ो। मैंने महाराज जी को रामायण दी कि मैं कहाँ से पढ़ूँ तो उन्होंने रामायण खोलकर मुझसे गुरु वन्दना पढ़वायी।





‘बंदुं गुरु पद पदुम परागा.....  
.....कौतुक देखत शैल बन, भूतल भूरि निधान।’

इतना पढ़ लेने के उपरान्त रामायण बन्द करवा दी। उसी क्षण मैं समझ गया कि महाराज जी ने मेरी शंका का समाधान कर दिया। अन्य उपस्थित भक्त लोगों ने इसको एक साधारण प्रसंग ही समझा होगा। वे ऐसे गुप्त रूप से अपने भक्तों को शिक्षा दिया करते थे।

### अध्यात्म शिक्षा

एक समय की बात है वशिष्ठ गुहा में सायंकाल नित्य नियमानुसार भजन व कीर्तन संस्कृत में हो रहा था, मैं संस्कृत नहीं समझता था। कीर्तन की समाप्ति के बाद सब बाहर चले गए। मैं केवल महाराज जी के पास बैठा था। महाराज जी उठकर गुहा के बाहर मेरे कंधे पर हाथ रखकर निकलने को हुए तो मुझसे कहा।

‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः  
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः’

इतने में ही अगर चित्त establish हो जाय तो काफी है।

एक समय महाराज जी ने मुझसे कहा कि :-

"Silence is the best song" या "Talk for Talk sake." "Attachment is hell, nonattachment is happiness". मनोनिवृत्ति परमोशान्ति। So try to detach from outside world and go and go inside and inside. Sit inside with the grace of God and Guru you shall attain happiness in no time".

तुलसीदास जी ने भगवान के लिए कहा है :-

‘बिन पद चलइ सुनइ बिनु काना

कर बिन करम करइ बिधि नाना  
आनन रहित सकल रस भोगी  
बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी’

### गुरु कृपा

एक बार जाड़े के दिनों में महाराज जी सदैव की भाँति लखनऊ आये और फिर यहाँ से इलाहाबाद चले गये। वहाँ उनका ६-७ दिन ठहरने का विचार था। इधर लखनऊ में मेरे भ्राता श्री माधव प्रसाद जी के चेहरे पर फ़ालिज का असर हो गया था और इस बात को महाराज जी इलाहाबाद में बैठे हुए जान गये। उन्होंने वहाँ भक्त लोगों से अपने लखनऊ वापस जाने की बात कही और अन्य साधु सन्तों को सूचित कर दिया। इसके साथ एक तार भी भिजवा दिया। उस वक्त वहाँ लोगों को ये आश्चर्य हुआ कि क्यों इतनी जल्दी वापस जा रहे हैं। लखनऊ पहुँचते ही वे मेरे भाई के घर पर पहुँचे और फिर रात के समय स्वयं काफी पीने की इच्छा जाहिर की। उस काफी की एक दो घूँट पीकर उन्होंने प्रसाद के रूप में इंजीनियर साहब को पीने के लिये दे दिया जिसको भाई साहब पी गये। इस वक्त भाई साहब को उसका स्वाद भी मालूम हुआ जबकि इसके पहले पानी या किसी अन्य चीज़ का स्वाद उनको नहीं मालूम होता था। सुबह के समय महाराज जी ने अपने खाने के लिये खिचड़ी बनवायी। उसमें से दो चम्मच खा लेने के बाद उन्होंने वो खिचड़ी इंजीनियर साहब को खिला दी और उनसे कहा ‘तुम्हारा इलाज हो गया।’ इसके बाद वे शुक्ला घाट चले गये।

महाराज जी की अमर वाणी है।

"Love, Love is God, Love Him, what is wanted is love, Blessed is he who can Love, Love, Love."

□□





## गुरु महाराज

— सुशीला जर्मनीदास

सन् १९५३ में मैं गुरु महाराज श्री पुरुषोत्तमानन्द जी की शरण में गई। मुझे आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ और फिर बाद में गुरुमन्त्र का प्रसाद भी। वह मन्त्र जिसको जपने से मेरा सारा रोग दुःख दूर हो गया। उन दिनों मैं एक ऐसे उदर रोग से पीड़ित थी कि प्रतिदिन स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। सारे वैद्य, हकीम, डाक्टर और होमियोपैथ मेरा इलाज कर के हार चुके थे। इसलिये मुझे क्या मिला यह मैं ही जानती हूँ

महाराज जी केवल काम की बात करते थे और वह भी बड़ी सूक्ष्मता से वरना मौन में विश्वास करते थे। यही दोनों बातें वे औरों को अपनाने के लिये कहते थे। कहते थे

‘बोलना ही है तो अधिक समय तक धार्मिक पुस्तकों का सस्वर पाठ करो।’ विष्णु सहस्र नाम जितना अधिक मन से जपोगे उतना ही कष्ट निवारण होगा और यह बात सौ प्रतिशत सच है।

एक बार मैं अपने पति दीवान जर्मनीदास (प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक महाराजा के रचनाकार) तथा अपने भाई के साथ गुरु महाराज के दर्शन को पहुँची। मेरे साथ स्विट्जरलैण्ड के कुछ लोग भी थे। उनमें से एक ने पूछा ‘साधु लोग जंगल में बैठकर क्या करते हैं?’ महाराज जी ने उत्तर दिया, ‘वही साधना जिससे महात्मा गांधी ने बिना किसी हिंसा के हिन्दुस्तान आजाद करा दिया।’



## मैं कैसे बची

— शान्ति मेहरोत्रा

मेरा परिचय महाराजजी से १९४८ से है जब वे बाराबंकी में स्वर्गीय आनन्द वाटल के निवास स्थान पर पधारे थे। वाटल साहब और उनकी पत्नी से हमारे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उन्हीं के माध्यम से महाराजजी ने मुझको और मेरे पति को मन्त्र दीक्षा दी थी।

जनवरी, १९५४ में प्रयाग में महाकुम्भ पड़ा था। तब मैं अपनी सास, छोटी, बेटा, चाचा और चाची के साथ कुम्भ स्नान को गयी थी। मेले में व्यवस्था ठीक न होने के कारण बड़ी भगदड़ मची और अनेक लोगों ने भीड़ में दबकर अपने प्राण त्याग दिये थे। दुर्भाग्यवश मैं भी उस भगदड़ के चपेटे में आ गई। एक के ऊपर एक मेरे चाचा, चाची, सास और छाती में चिपकाये अपनी बेटा के साथ मैं धराशायी हो गयी।

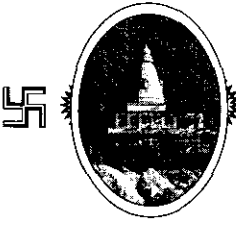
जान बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। मैंने गुरुदेव को पुकारा ‘बचाओ’। इतने में क्या देखती हूँ कि दो घुड़सवार बड़े सुन्दर घोड़ों पर सवार भीड़ को चीरते हुये आ गये और हाथ पकड़कर उन्होंने हम सबको बचा लिया। मैंने जब यह वृत्तान्त अपने पतिदेव को सुनाया तो उन्होंने इलाहाबाद के तत्कालीन जिलाधीश से मिलकर उनको धन्यवाद देना चाहा तो मालूम हुआ कि वहाँ घुड़सवारों का कोई भी प्रबन्ध नहीं था। यह तो कोई दैवी चमत्कार था।

इसके उपरान्त जब मैं वसन्त पंचमी को महाराज जी से इलाहाबाद में मिली तो उन्होंने देखते ही अपनी मनमोहक हँसी से कहा— ‘बच गई!’

जय जय गुरुदेव !







अब यह भी पता चल गया कि संस्कृत भी जानते हैं। अपनी अशक्ति को स्वीकार करते हुये मैंने कहा, “ क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्ययादुर्गं पथास्तत् कवयो वदन्ति” (जानकर साधक इस मार्ग को छुरे की धार की तरह बताते हैं)। महाराज जी ने कहा, “ उत्तिष्ठ जाग्रत, प्राप्य वरान निबोधत” (उठो जागो, श्रेष्ठ पुरुषों से उसका ज्ञान प्राप्त करो)। महाराज जी का यह वचन मेरे लिये स्पष्ट निर्देश जैसा प्रतीत होने लगा। इस बीच में उन्होंने अपने हाथ का फूल मेरी ओर फेंक दिया था, जो अब मेरे हाथों में था। थोड़ी देर बाद महाराज जी ने फिर कहा—

**“दुर्लभं त्रयमेवैत्, दैवानुग्रह हैतुकम्।  
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं, महापुरुषसंश्रयः”।।**

(बिना देव कृपा के ये तीनों चीजें दुर्लभ हैं, मनुष्य जन्म, मुक्त होने की इच्छा और महापुरुष का आश्रय)।

## उनकी कृपा

मन को एक दिशा मिली, और सोचा कि बिना गुरु के भी तो गति नहीं। अभी तक तो गुरु मानकर किसी को आत्म निवेदन भी किया नहीं। निश्चय किया कि यदि अवसर मिला तो प्रार्थना करूंगा। अध्यात्म चर्चा यहीं रुक गई। दुनियादारी आ गई। महाराज जी ने पूछा “ क्या करते हो, पत्नी कहाँ है, बच्चे कितने हैं, कहाँ रहते हो ”। बच्चों को बुलाने के लिये कहा। दोनों लड़कियाँ आ गईं। बड़ी लड़की 7 वर्ष की थी, उसे पास बैठाकर कुछ कहते रहे। छोटी 3 वर्ष की थी। वह भी पास बैठी रही। पत्नी तो मेरे साथ ही। इतने में महाराज जी का भोजन आ गया। सब लोगों को नीचे जाकर यज्ञ प्रसाद लेने के लिये कहा गया। सब चले गये। मैं फिर भी बैठा रहा। मौके की तलाश में था। समस्या का समाधान महाराज जी ने स्वयं किया। खाना खाने वालों से कहा आप भी जाकर खाना खाओ, ये तो मेरे पास हैं ही। मैं अकेला रह गया। महाराज जी भोजन कर रहे थे, और मैं उनके मुख को टकटकी लगाये देख रहा था। मन का ताप आँखों के रास्ते आँसू बन कर बह चला। मैंने प्रार्थना की “ महाराज! आपकी कृपा मुझ पर भी होनी चाहिये। ” महाराज

जी शान्त भोजन करते रहे। भोजन करके निवृत्त हुये ही थे कि फिर भक्तों की भीड़ ने घेर लिया। कुछ देर बाद नीचे उतरे और आकर कार में बैठ गये। भक्तों ने चारों ओर घेर ही रखा था। मैं सबसे पीछे दूर खड़ा था। सोच रहा था प्रार्थना भी व्यर्थ गई। कार में बैठने के बाद महाराज जी ने चारों ओर निगाह दौड़ाई। किसी ने मुझसे कहा कि मुझे बुला रहे हैं। पास पहुंचा तो कहा जहाँ ठहरा हूँ, वहाँ आना। सबके चले जाने पर मैंने बैजनाथ शुक्ला जी से पूछा कि आपके गुरु कहाँ ठहरे हैं, वे मुझे बुला गये हैं। उन्होंने कहा कि मैं शाम को चार बजे उनके पास चलूंगा, आप भी चलें।

“ इष्टं धर्मेण योजयेत् ” की बात दिमाग में आई। डा. जयचन्द्र शर्मा मेरे मित्र एम.बी.बी.एस. डाक्टर थे। पाकिस्तान से आने के बाद पी.एम.एस. में आ गये थे। अध्यात्म में तो कम पर पूजा, पाठ, तन्त्र, योग और सबसे ऊपर साधू संग में रुचि थी। उनकी इच्छा थी कि कोई साधू उन पर उपकार कर दें। मैंने उनसे कहा कि एक अच्छा साधू आया है क्या वे उसके दर्शन करना चाहेंगे, तो वे तत्काल तैयार हो गये। डा. जयचन्द्र शर्मा शुक्ला जी के यहाँ आये और वहाँ से हम तीनों राजेन्द्रनगर माधव प्रसाद जी के मकान पर गये, जहाँ महाराज जी ठहरे थे।

महाराज जी के पास दाहिने ओर श्री हंसराज नागर खड़े थे, और मैं कुर्सी का हत्था पकड़े उकड़ूँ बैठा था। महाराज जी ने डा. जयचन्द्र शर्मा जो हृदय रोग से पीड़ित थे, से पूछा “ Are you getting strength ” (क्या तुम्हें शक्ति मिल रही है)। डा. जयचन्द्र शर्मा ने कहा, “हाँ”। इस व्यापार को तो वे दोनों जानें, पर उसके बाद लगभग 12 वर्ष तक डा. जयचन्द्र शर्मा नीरोग जीवित रहे। मैं इस सबको शंका, उत्साह और जिज्ञासा की दृष्टि से देखता रहा।

महाराज जी ने सांस रोकने को कहा था, सांस रोकना था कि मेरी दुनिया ही बदल गई। बाद में महाराज ने वाक्य भी बोला, और मन्त्र भी। परन्तु क्रिया तो इससे पहले ही हो चुकी थी। बाद में मैंने जाना कि इसे ही शास्त्रों में वेध दीक्षा कहते हैं।





## वशिष्ठ गुहा के संस्मरण

मई मास में ग्रीष्मावकाश में मैं गुहा गया और लगभग एक सप्ताह से अधिक महाराज जी का सान्निध्य रहा। कुछ प्रश्न भी किये और उनसे मैंने क्या पूछा था। उन्हें तो मैंने गुरु माना नहीं था। स्वामी भूमानन्द जी से मिलने पर उन्होंने बताया था कि किस प्रकार वे गुफा से लगभग दो तीन मिल दूर गंगा के किनारे बैठे हुये गंगा में डूब मरने का विचार कर रहे थे, क्योंकि तब तक उन्हें कोई गुरु मिला नहीं था। भटकते भटकते वे जीवन से ऊब चुके थे। महाराज जी ने किसी शिष्य को भेज कर भूमानन्द को बुला भेजा था और उसके बाद महाराज जी ने उन्हें दीक्षा और सन्यास भी दिया। स्वामी भूमानन्द से पूछने का आशय महाराज जी का इस घटना से अभिप्राय था। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि महाराज को दूरदृष्टि की सिद्धि थी।

एक दिन एक व्यक्ति गुफा में आया। दोपहर का भोजन उसने किया, अपरान्ह की चाय भी उसने पी ली थी। महाराज जी आकर गुफा के सामने चबूतरे पर बैठ गये। मुझसे कहा यदि इस व्यक्ति ने चाय पी ली हो जो उसे जाने के लिये कहो। मुझे यह व्यवहार कुछ अच्छा नहीं लगा, फिर भी मैंने उसे बताया कि महाराज जी उसे जाने के लिये कह रहे हैं। वह आनाकानी कर रहा था। मैं उसके पास जाकर उसे समझा रहा था कि जैसा कहा जा रहा है, करो। परन्तु वह चुप बैठा था। महाराज जी ने जोर से कहा " **He is gambler** " (वह जुआरी है)। वह अंग्रेजी जानता नहीं था। मैंने उसे जुआ खेलने की बात कही, तो सकपका गया। माफी मांगने लगा और चला गया। वह झूठ बोलकर कुछ आर्थिक सहायता चाहता था। उसके जाने पर मैंने महाराज जी से पूछा कि आपने कैसे जाना कि वह जुआरी है। उन्होंने केवल इतना कहा, " **I know** " (मैं जानता हूँ)। जानते तो वे थे ही, यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा था। यह उनके परचित्त ज्ञान की सिद्धि की बात थी।

एक बार लखनऊ स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये गया। दूसरे प्लेट फार्म पर गाड़ी रुकी थी। पुल पार कर रहे थे। सीढ़ियों पर एक भिखारी बैठा था। मैं उनके साथ चल रहा था। धीरे से बोले " **Give him something** " (इसे कुछ दे दो) और कहा " **Unless you melt, how you can unite!** " (जब तक पिघलोगे नहीं, जुड़ोगे कैसे)। कितना मार्मिक और तत्त्वार्थ से पूर्ण वाक्य है। ईश्वर भक्ति और दुखी पर करुणा दोनों ही तो हृदय को द्रवित करते हैं।

महाराज जी ने अनेक बार कहा कि, " **Be Strong** " (बलवान बनो) पर मन की दुर्बलता तो गई नहीं। कई बार मुझसे अकेले में पूछा तुम्हें कोई आर्थिक कष्ट तो नहीं है। कष्ट तो मेरे जीवन में प्रारम्भ से रहे हैं, परन्तु महाराज जी से तो उनकी कृपा ही मांगता था।

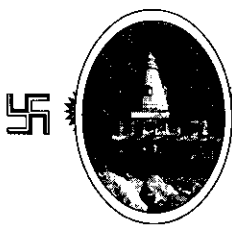
शरीर पूरा होने से लगभग एक मास पूर्व मेरे पत्र का उत्तर देते हुये उन्होंने मुझे लिखा था कि यदि समय हो तो गुफा चले आओ। मैंने लिख दिया विद्यार्थियों की परीक्षायें निकट हैं, अभी आना सम्भव नहीं ग्रीष्मावकाश में आऊँगा। ग्रीष्मावकाश भी आया, मैं गुफा भी गया, पर उनके दर्शन तो भाग्य में नहीं थे। उनका शरीर पूरा हो चुका था।

मन में फिर वही रिक्तता व्याप्त हो गई है। जब कभी अवसर मिलता है, गुफा भी जाता हूँ। तृण, गुल्म आदि में खोजता हूँ। सुगन्ध तो मिलती है, पर दर्शन कहां। बिना नाविक के नाव चल रही है। अन्त में वही, लिखकर जो मैंने अपने प्रथम पत्र में लिखा था, समाप्त करता हूँ—

*"ध्येयं सदा परिभवध्नमभीष्टदोहम्,  
तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्।  
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाधिपोतम्,  
बन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥"*

□□





## ॐ श्री सतगुरुभ्यो नमः

— सावित्री खेत्रपाल

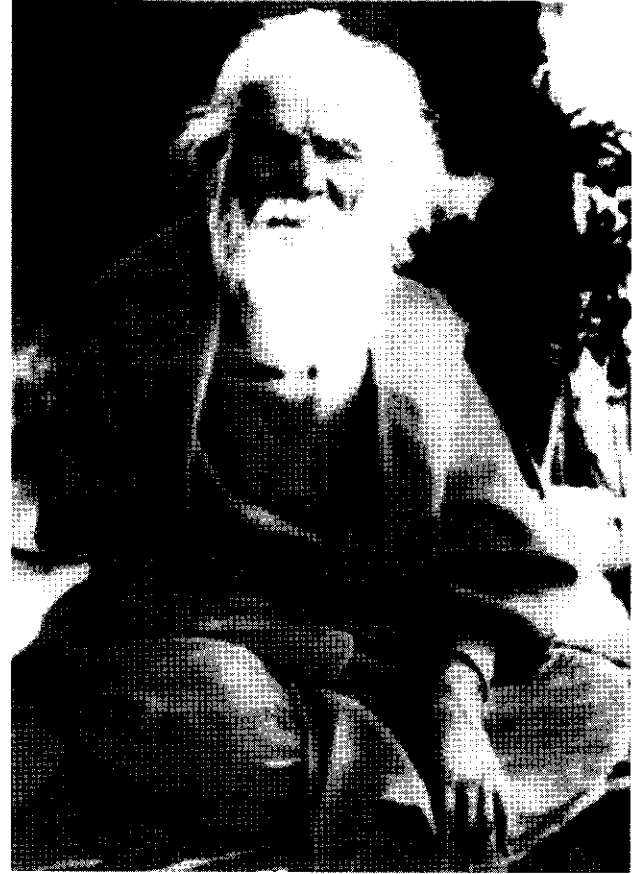
ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानान्जनशलाकया  
चक्षुरन्माप्लतं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः  
करती हूँ मै वन्दना नत शिर बारम्बार  
तुझे देव परमात्मा मंगल शिव शुभकार  
अंजलि पर मस्तक एकये विनय भक्ति के साथ  
नमस्कार मेरा तुझे होवे जग के नाथ  
दोनो करको जोड़कर मस्तक घुटने टेक  
तुझको प्रणाम शत-शत कोटि अनेक।  
पाप हरण मंगल करण चरण शरण का ध्यान  
धार करूँ प्रणाम मै तुझको शक्ति निधान  
भक्ति भाव शुभ-भावना मन में भरपूर  
श्रद्धा से तुझको शक्ति निधान  
सत्य ज्ञान शुभ-भावना मन में भरपूर  
श्रद्धा से तुझको नमूँ मेरे गुरु हजूर  
सत्य ज्ञान आनन्द के परम धाम श्री गुरुवर  
पुलकित हो मन मेरा बहुत बहुत प्रणाम

गुरु माँ की तरह होता है और शिष्य; शिशु की तरह होता है। गुरु-शिष्य संबंध के कई स्तर होते हैं। शिष्य का अर्थ है जो गुरु को धारण करले, जिसमें गुरु की गुरुता समा जाए। शिशु जैसे माँ के आश्रय होता है(पड़ता है)। जिसे शरणागति कहते हैं। और फिर

आध्यात्मिक रूप से विकसित होता है। गुरु-शिष्य का आत्मा का संबंध है। सदगुरु गुलामी की शिक्षा नहीं देता। वो आत्मतत्व में स्थिर होने पर जोर देते हैं। श्रीमद्भगवत में महर्षि कपिल अपनी माता देवहूति को आत्मज्ञान देते हैं। माँ देवहूति पुत्र के शरीर में नारायण के छिपे हुए स्वरूप को जान रही है। उनमें एक ज़रा अभिमान नहीं है। आजकल कौन अपने पुत्र से ज्ञान लेगा। उल्टा यही कहेंगे, हमें शिक्षा

देने आया है। माँ शरीर को देख रही है। माँ होने का अहंकार बाधक हो रहा है। लेकिन कपिल माँ के रूप में बैठी हुई सती साध्वी देवहूति को, सत्य की जिज्ञासा करने वाली पवित्र आत्मा के रूप में देखते हैं। ऐसा ही एक प्रसंग रामायण में आता है। लक्ष्मण राम से कहते हैं, भैया ऐसा ज्ञान दीजिए, जिसमें सुगमता से इस अज्ञान रूपी समुद्र से पार हो जाऊँ। तुलसीदास जी कहते हैं

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कही समझाइ  
जाते होए चरन रस, सोक, मोह, भ्रम जाइ।



मानव मन के गुणों-अवगुणों को भली-भांति जानता है। गुरु तभी तो वह गुण हैं जो शिष्य के चेतन अचेतन मन





में क्या चल रहा है। यह जानता है। वह दोनों ओर से शिष्य की समस्याओं को सुलझाता है। अज्ञान का मूल कारण अचेतन है। इसलिए प्रकाश की किरणें भी गुरु से प्रकाशित होती हैं। मैंने अपने गुरु महाराज के स्थान (वशिष्ठ गुहा) का आज से २६,२७ वर्ष पूर्व दर्शन किये थे। भाग्य की बात है, उनके साक्षात् दर्शन मैं नहीं कर पाई लेकिन उनके प्रवचनों का पहला प्रभाव मुझपर पहली बार ही पड़ गया था। सामने जो लिखा है, हिरन की तरह मत भागो, अपने अंदर देखो। हिरन कस्तूरी बाहर ढूँढ़ता है जो उसके अंदर है हम भी प्रभु को बाहर ढूँढ़ते हैं जबकि वो तो हमारे अंदर ही है। कौन दिखा रहा है, कौन बुला रहा है, कौन चला रहा है, कौन सब कार्यों के लिए आदेश दे रहा है, वही है जो सब कुछ करने वाला है, गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पांय सुखमनी जी में कहा गया है

**‘करन करावन आपे आप  
मानुष के कुछ नहीं हाथ’  
‘करन करावन करने योग्य  
जो तिस भावे सोई होग’**

भगवान ही सब करने वाले हैं, मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है। जो प्रभु को अच्छा लगता है वही होता है इसलिए मुझे कोई अफसोस नहीं है कि मुझे गुरु महाराज के दर्शन नहीं हुए, उनकी चाह में मेरी चाह है। मुझे इसी में संतोष है।

मैंने अपने गुरु महाराज को पहली ही बार में अपने हृदय से अपना गुरु मान लिया था। मेरे मन में जो भी विचार अच्छे, बुरे आते हैं, मैं अपने गुरु महाराज जी के आगे बैठकर सब कह देती हूँ। उन्होंने मेरी कई इच्छाओं की पूर्ति की है, मुझे सब कुछ दिया है। मैं बार बार उनका धन्यवाद करती हूँ।

मैंने अपने मन के ‘मैं’ को तोड़ दिया है। मैं कभी संकल्प नहीं करती हूँ। ज्यों ज्यों हुकम त्यों त्यों कहर-पंजाबी में कहते हैं। जैसे जैसे वह आज्ञा देते हैं मैं वैसे ही चलती हूँ।

मेरे मन में कई दिनों से विचार आता था कि कोई झूठी बात कहता है तो मुझे क्रोध क्यों आता है मैं दुखी क्यों होती हूँ। बार बार प्रार्थना करने से मुझे उत्तर भी मिल गया है। क्या उत्तर है— कहने वाले के आगे हाथ जोड़ कर उसको नमस्कार कर लो मन शान्त हो जाएगा, क्रोध भाग जायेगा। मनुष्य के मन में काम, क्रोध, मोह, अहंकार आदि कई विकार भरे हुए हैं कोशिश करती हूँ कि यह मुझ पर हावी न हों। जब काम, लोभ, मोह, अहंकार आता है तो मैं सजग हो जाती हूँ और मन ही मन इनको बुद्धि से विचार कर थोड़ा शांत कर लेती हूँ। पूर्ण रूप से तो नहीं लेकिन फिर भी क्रोध की अपेक्षा यह शांत है। क्रोध तो आपे से बाहर हो जाता है। आज तक उस पर काबू नहीं कर पाई हूँ लेकिन गुरु पा जो आज मुझे मिली है उस पर यदि मैं सूझ बूझ से चलींगी तो उम्मीद है वश में हो जायेगा। “करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान”

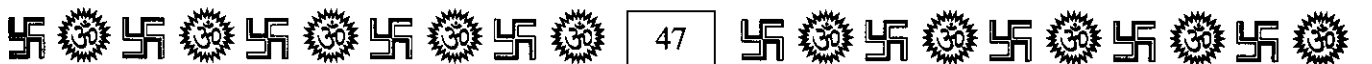
मेरे गुरु महाराज पर मेरी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास है। कर्ता तो मेरे गुरु महाराज हैं वह मुझे प्रेरणा दे रहे हैं अवश्य सफलता मिलेगी।

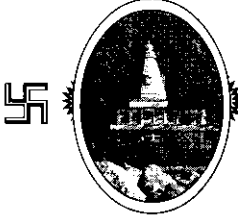
**“दीनों के नाथ हैं मेरे गुरु महाराज  
सुख शान्ति और चरणों की भीख देवें आप”**

मैं अपने सब गुरु भाइयों का बार बार धन्यवाद करती हूँ जो गुरु महाराज जी की आज्ञा पर चल रहे हैं। देख कर प्रसन्नता होती है सब साक्षात् गुरु का रूप हैं। धैर्य, कर्म, ज्ञान, श्रद्धा की मूर्तियाँ हैं। जो वह कहते हैं सत्य वचन है। शान्ति के स्वरूप हैं, धैर्य और धर्म के ज्ञाता हैं। मैं बार बार उनके चरणों में नमस्कार करती हूँ। वे अपने गुणों की हम सब पर वर्षा करते रहें।

कई त्रुटियाँ होंगी। पढ़ कर क्षमा करना। मैं अवगुण हारी गुण कोई नाही आपै तरस पईओ आप ही दया करेंगे।

□□





## मेरे परम प्रिय गुरु महाराज जी

“गुरुमहाराज के चरणों में उर्मिला का क्रेटि-क्रेटि प्रणाम

— उर्मिला कांती श्रीवास्तव

मैं तुच्छ अकिंचन गुरुमहाराज जी के विषय में कुछ भी लिखने में असमर्थ हूँ। फिर भी उनके मिलने और दर्शन के उपरान्त जो अनेक अनुभव मेरे जीवन में घटित हुये हैं उनमें से कुछ अनुभवों को लिख रही हूँ।

यह वर्ष १९४५ की बात है। मेरी आयु लगभग आठ वर्ष की रही होगी। मैं अपने बड़े चाचा स्व. श्री माधव प्रसाद जी के साथ संयुक्त परिवार के रूप में लखनऊ नगर के मध्य में स्थिति पीलीकोठी में रहती थी। मेरे चाचा जी महाराज जी के बड़े भक्त थे। एक दिन महाराज जी पीली कोठी आये और चाचा जी के कमरे में शान्त मुद्रा में बैठे थे तभी मैं उनसे मिली। महाराज जी के पास गांधी जी की तरह एक गोल पाकेट वाच थी। मैंने उसी समय ऊन का बटुआ बुन कर महाराज जी को भेंट किया। महाराज जी ने तुरन्त बड़े मन से उसमें घड़ी रख कर कुरते के जेब में very nice, very nice, कहते हुये रख लिया। यह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य थे मुझे इतने प्यारे इतने महान गुरुमहाराज के दर्शन हुये और सान्निध्य प्राप्त हुआ।

मेरे पापा स्व. श्री सीताराम श्रीवास्तव इंजीनियर वर्ष १९४६ से गरुघाट पम्पिंग स्टेशन परिसर में नव निर्मित बंगले में पीलीकोठी से आकर रहने लगे थे। यह गोमती के किनारे एक रमणीक स्थान था। यह वर्ष १९५० की बात है महाराज जी शुक्लाघाट पर ठहरे हुये थे। एक दिन बड़े चाचा जी का फोन आया कि महाराज जी ४-६ दिन एकान्त वास हेतु शुक्लाघाट से हमारे यहाँ ठहरने जा रहे हैं। महाराज जी स्वतः हम लोगों के यहाँ आकर ठहरे। यह उनकी विशेष कृपा थी। महाराज जी सामान्यतः किसी के घर पर नहीं ठहरते थे। इसके बाद हमारा परिवार महाराज जी से ऐसा जुड़ा कि आज तीसरी पीढ़ी तक के सभी लोग महाराज जी पर पूरी श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। यह श्रद्धा एवं विश्वास उनके अपने निजी अनुभवों पर है।

महाराज जी वर्ष १९५३ में अपने शुक्लाघाट के प्रवास के समय मेरा विवाह डॉ. एस.एन. श्रीवास्तव जो उस समय

लखनऊ मेडिकल कालेज में पढ़ रहे थे, से शुक्लाघाट में द्वितीय तल पर स्थिति मोन्दर के सम्मुख उनके हाथों में मेरा हाथ देकर किया। बाद में मेरा विवाह नम्बर १९५४ में रीतरिवाज के अनुसार हुआ था। मेरे विवाह उपरान्त यह पवित्रयाँ



महाराज जी ने पत्र द्वारा लिख कर भेजी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महाराज जी के इच्छानुसार हमारा उनसे पत्राचार संस्कृति भाषा में ही होता था।

एक ही वचन एक व्रत नेमा।

काय वचन मन पति पद प्रेमा।।

इसमें एक नारी के लिये कितना गूढ़ रहस्य छिपा था और उसका पालन भी महाराज जी ने जीवन पर्यन्त जब तक हमारे पति रहे मुझसे करवाया। मुझे हमेशा महाराज जी की उपरोक्त दो लाइने याद रहती थी।

मेरे विवाह के बाद मेरे पति (डॉ. एस एन श्रीवास्तव) को, महाराज जी ने अपनी ओर ऐसा आकर्षित किया कि वे मुझसे भी अधिक उनके भक्त हो गये। वशिष्ठ गुहा में महाराज जी ने उनको "गुरुमंत्र" भी दिया। उन्होंने गुरुमहाराज जी की प्रेरणा से उनकी तस्वीर बनयी तथा बहुत से भजन





लिखे जिसको सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज जी मुस्कराते हुये साक्षात विराजमान है।

मेरी पहली बेटी शारदा जब ६ महीने की थी मैं पहली बार अपने पति और मां के साथ वशिष्ठ गुहा गयी थी तब मेरी पुत्री शारदा का अन्नप्रासन महाराज जी ने उसे अपनी गोद में लेकर चांदी के रूपये से खीर चटा कर किया और वह रूपया भी उसको दिया। उसके बाद मेरी दूसरी पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम महाराज जी ने (भवानी) रखा जो अब पूनम के नाम से है। चार साल बाद बड़ी बेटी के विद्यारम्भ की तैयारी थी सारा प्रबन्ध किया गया था उस समय बड़ी बेटी ५ साल और छोटी ४ साल की थी। मुझको अभी भी याद है कि गऊघाट में मेरे पिता के घर महाराज जी बैठे थे और भी बहुत से लोग थे। उसी समय मेरे मन में यह विचार आया ही था कि मेरी बड़ी बेटी का तो गुरु महाराज ने अन्नप्रासन भी किया और विद्यारम्भ भी हो रहा है पर छोटी बेटी का तो गुरुमहाराज द्वार कुछ भी नहीं हुआ मेरे मन में इतना आते ही तुरन्त महाराज जी बोले भवानी कहां है बुलाओ। वह सो रही थी उसको जगा कर लाया गया महाराज जी ने पहले भवानी का मुंह खोलकर अपनी ऊँगली से ओम् लिखा फिर शारदा की जबान पर ओम् लिखा। मैं धन्य हो गयी अन्दर से रोमांचित हो गई कि कैसे महाराज जी ने मेरे मन की बात जान ली और मुझ पर इतनी कृपा की। महाराज जी हर एक मन की बात जान जाते थे। इस विषय में एक अपनी निजी घटना का उल्लेख करना चाहूंगी।

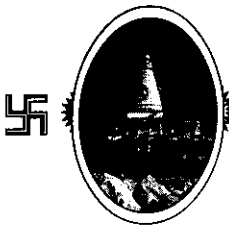
महाराज जी हर वर्ष शुक्लाघाट पर बीस-पच्चीस दिन के लिए आकर रुकते थे उन्हीं दिनों उनके भक्तजन उनके दर्शन के लिए मिलने जाया करते थे। गुरु महाराज के मिलने का कोई समय निश्चित नहीं था। किसी समय भी कोई भी भक्त मिल सकता था वे अधिकतर शान्त मुद्रा में

समाधि अवस्था में रहते थे फिर भी जब मैं अपने माता पिता के साथ उनके सामने बैठती थी वो कुछ ही देर में मेरी तरफ ऊँगली का इशारा करके कहते (हे) भजन सुनाओ फिर मैं उनको भजन सुनाती जैसे (रहना नहीं देश विरान है आदि आदि।) वे सुनने के पश्चात् कहते very nice very nice महाराज जी के सामने एक दम pindrop silence रहता था। ऐसा लगता था कितनी शान्ति है और हम कहाँ स्वर्ग में पहुँच गये हैं। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण था कि वे सबको अपनी ओर चुम्बक की भांति आकर्षित कर लेते थे।

मुझे यह लेख लिखने के लिए मेरे भाई सुरेश (एच.के. श्रीवास्तव) ने प्रेरित किया और गुरुमहाराज जी ने शक्ति दी। क्योंकि अभी दो माह पूर्व मेरे पति का अचानक दिवाली की पूर्व की रात २ बजे सांस फूलने लगी तथा दिवाली के दिन रात्रि में सवा दस बजे अस्पताल में प्राणन्त हो गया। उनका पार्थिव शरीर जब घर आया तो उनका मुंह थोड़ा खुला हुआ था। गुरु महाराज ने मुझको गंगाजल पिलाने की प्रेरणा दी। शायद गंगाजल पति को मेरे हाथों से पीना था। मैंने जैसे ही एक ढक्कन ना कर उनके मुंह में डाला वो कहीं से भी नहीं निकला और देखते देखते किस समय उनका मुंह बन्द हो गया इसका उपस्थित सभी लोगों ने अनुभव किया। अन्त में चैतन्या नन्द स्वामी जी ने मुझको इस कठिन समय में ढाढ़स दिलाया और कहा रोना नहीं, नहीं तो डाक्टर साहब की आत्मा को कष्ट होगा। उनका यह कहना ही मेरे लिये ब्रह्म वाक्य हो गया। और जब भी मुझे रोना आये तो स्वामी जी का वाक्य ध्यान में आ जाता है और मैं शान्त हो जाती हूँ। यह सब मेरे परम प्रिय गुरुमहाराज जी की कृपा है कि मुझको शान्ति दी और मुझे सम्भाला।

अन्त में मैं इतना कहना चाहती हूँ कि जो सच्चे दिल से उन पर पूरा विश्वास रखते हैं भजन, पूजन करते हैं मेरे गुरुमहाराज जी अन्त में उसको अपनी शरण में लेते हैं। ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

□□

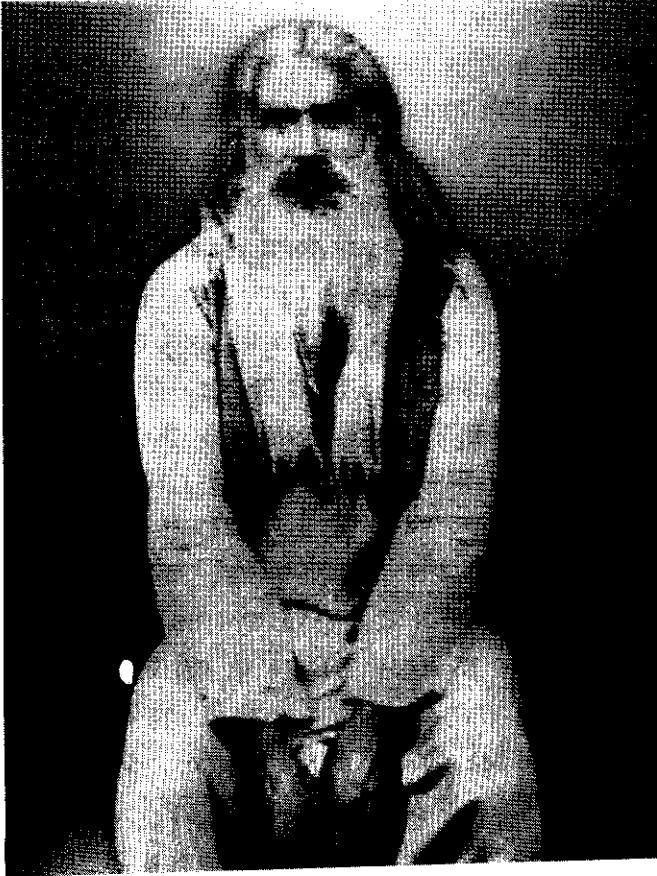


## ॐ श्री गुरुदेवाय नमः

श्री गुरुचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम कर के बन्दना करता हूँ

— आर. एल. चौधरी

हमारा परिवार स्वामी रामानन्द जी का श्री गुरु महाराज जी के साथ लाहौर (पाकिस्तान) से ही १९४० से पहले से जुड़ा हुआ है। सन्त लभु राम के दर्शन करने आते



स्वामी रामानन्द जी

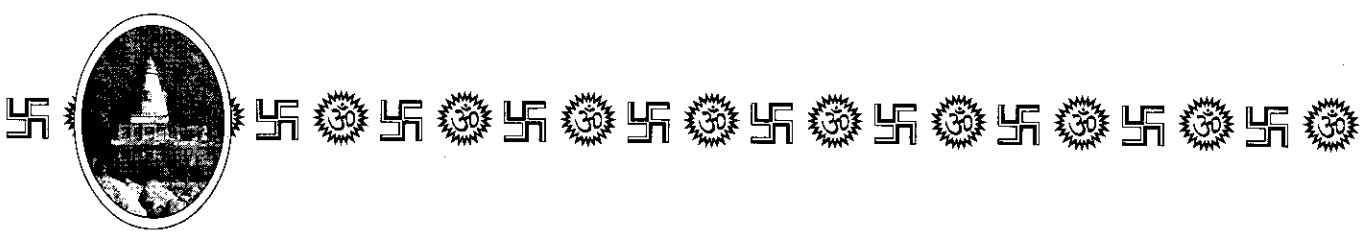
थे। सन्त लभु राम इच्छाधारी सन्त थे उन का कोई आश्रम नहीं था उन को ५२ व्यक्ति ही जानते थे। सन्त लभु राम जी ने ही बताया कि अगर कलयुग में कोई महापुरुष सन्त है तो वह महाराज जी स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी ही है। अगर कुछ पाना चाहते हो तो महाराज जी के चरणों में जाओ वही

कलयुग की जलती जोत है। सन्त लघुराम जी वशिष्ठ गुफा महाराज जी के दर्शन करने आया करते थे भण्डारे में भी अवश्य आते थे, स्वामी चैतन्यानन्द जी महाराज को मालूम था और किसी को नहीं मालूम था। सन्त लभुराम जी ने महाराज जी के बारे में लिखा है— वशिष्ठ गुफा में ऋषि जी (महाराज जी) से कुछ सम्पत्ति लेकर अपने पास रखनी चाहिए। आशा है ऐसा अवश्य करोगे लाभ होगा। सन्त लभु के पत्र मेरे पास उर्दू में लिखे हुए रखे हैं जिन्हें मैंने हिन्दी में लिखा है।

हमारा परिवार पिता जी, चाचा जी, ताऊ जी सभी महाराज जी से दीक्षित थे। सन्त लभु राम ने कहा भी है कि तुम्हारे परिवार में से एक सन्त हो जायेगा आखिर में हमारे ताऊजी स्वामी रामानन्द हो गये और अन्त तक वशिष्ठ गुफा में ही रहे और सेवा की। उन्हें सन्यास का चोला महाराज जी ने दिया था। सन्त लभु राम जी ने लिखा है कि जो माया को लेंगे वह आशीर्वाद में कैसे आ सकते हैं। जो आप की अन्तरात्मा की आवाज़ हो वैसा ही करना चाहिए संसार ऐसा रहेगा, परन्तु हम नहीं रहेंगे। सन्तान स्त्री, माता-पिता सब अपनी कामना के साथी हैं। कोई कहीं चला जायेगा कोई कहीं। जिसको अपना जानता है। अज्ञान है भ्रम है, तभी दुःख है। दरअसल संसार में किसी और वस्तुओं से सुख शान्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। ओम् ऋषि जी कहते हैं तृष्णा से कोई मनुष्य खाली देखा नहीं जाता। जो तृष्णा से खाली है वह तो मुक्त हो ही सकता है सन्त लभु राम जी लिखते हैं आप के कष्ट और सफर को हम महसूस करते हैं आप लोगों ने दो सुनहरे अवसर खो दिये एक तो वशिष्ठ गुफा में दूसरा शिवपुरी में। याद रखो हमेशा दुनिया में ताकतवर ही जिया करते हैं कमजोरों का कोई वालीवारिस नहीं होता, निर्बल की कोई फरियाद नहीं सुनता, ऋग वेद में भगवान उपदेश देते हैं।







## गुरुमहाराज - मेरे संस्मरण

— उषा

सन १९५८ माघ का महीना प्रयाग (इलाहाबाद) गंगा जी के किनारे माघ मास बिताने हेतु गुरु महाराज एक भवन में ठहरे थे। उस समय मेरी आयु केवल ६ वर्ष थी। अपना स्कूल जाना छोड़कर मुझे गुरुमहाराज के चरणों में रहने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। आज जब मैं ये बीते हुए क्षण याद करती हूँ तो मेरा मन खुशी से झूम उठता है इसे मैं अपने पूर्वजन्मों के शुभ कर्मों का फल ही समझती हूँ।

प्रातः ४ बजे गुरु महाराज के साथ उठना अपने पिता (बाबू भागीरथ जी) माता और भाई बहनों के साथ गंगा नदी में स्नान करना यही नित्य नियम था। गुरु महाराज एक तख्त पर बैठते थे। और हम लोग दरी पर बैठते। महाराज कहते आँख बंद करके "राम राम" कहो मैं राम-राम बोलती लेकिन बाल बुद्धि होने के कारण बीच-बीच में आँख खोलकर महाराज को भी देखती। महाराज मुझे देखकर हँसने लगते। महाराज का हँसता हुआ चेहरा आज भी मेरे मन को प्रफुल्लित कर देता है। बगीचे से फूल लाकर उन्हें समर्पित करना और खुश हो जाना यह क्रम पूरे माह चलता रहा। पीताम्बर जी जो अब चैतन्यानन्द जी महाराज है उनकी सेवा में हर समय उनके पास रहते।

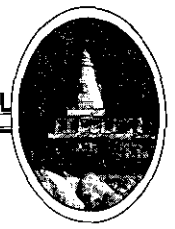
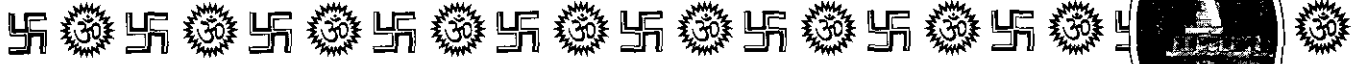
इतनी छोटी उम्र में मैं यह भी नहीं जानती थी कि गुरु क्या होता है गुरु की महिमा क्या है। केवल यही भाव कि गुरुमहाराज मुझे बहुत प्यार करते हैं मुझसे बातें करते हैं। बस इतना ही जानती थी। महाराज जी पूछते किस क्लास में पढ़ती हो? अंग्रेजी जानती हो? मैं जवाब देती-हाँ महाराज थोड़ी बहुत। महाराज जी शरीर के हाथ पैर आदि अंगों की ओर संकेत करते कि इसे क्या कहते हैं? और मैं उसका जवाब देती। जैसे eyes, ears, hand, nose, etc.। प्रसाद में कोई फल लाता तो वहीं से जहाँ बैठते मेरे पास फल फेंकते और मैं उसे पकड़ती इस खेल में बड़ा आनन्द आता और हम दोनों एक साथ हँसते। सच! गुरुमहाराज बच्चों को बच्चा बनकर ही प्यार करते थे और मैं उनके आगे पीछे घूमती रहती। इन घटनाओं का स्मरण करते ही मैं अपने को आज भी गुरुमहाराज के पास खड़ी अनुभव करती हूँ।

उन्हीं दिनों जब मैं महाराज के पास रह रही थी, एक दिन करीब शाम ५ बजे महाराज ने गंगा जी के उस पार

नाव से जाने की इच्छा व्यक्त की। मेरे पिता जी (बाबू भागीरथ) ने नाववाले से नाव मांगी और स्वयं भी चप्पू सम्हाला और गुरुमहाराज के साथ हम सभी भाई, बहन, वाटल साहब के बच्चे तथा कुछ अन्य लोग जो आश्रम में थे नाव पर बैठकर गंगा नदी में सैर कर रहे थे। महाराज ने कहा गंगा स्त्रोत गाओ। सभी गाने लगे और मैं उनके साथ केवल मुँह चला रही थी। गुरुमहाराज ने मुझे देखा और हँसने लगे। गंगा पार जब हम लोग पहुँचे महाराज ने मुझे अपने पास बुलाया, हाथ में 'स्त्रोत रत्नावली' लेकर गंगा स्त्रोत का एक-एक शब्द बोलकर मुझसे दोहराने के लिए कहा महाराज बोले- " 'कहो देवि सुरेश्वरि' मैंने कहा- देवि सुरेश्वरि, महाराज बोले, 'भगवति गंगे' मैंने कहा- भगवति गंगे, महाराज बोले 'त्रिभुवन तारिणि तरल तरंगे मैंने कहा-त्रिभुवन तारिणि तरल तरंगे'। इस प्रकार पूरी गंगा स्त्रोत मुझे पढ़ाई। उसके बाद गुरुमहाराज वशिष्ठ गुहा चले गए और हम लोग अपने घर वापस लखनऊ आ गए। फिर मैंने कभी भी गंगा स्त्रोत नहीं दोहराई।

गुरुमहाराज १९५६-६० में पुनः लखनऊ आए गोमतीनदी में बाढ़ के कारण शुक्लाघाट साफ नहीं था। इसलिए शहशाह आश्रम में ठहरे जो कि बहुत ऊँचा था और मैं महाराज के आते ही हंसराज नागर शिवपुरी वाले चाचा जी के घर से महाराज के साथ मकबरा हज़रतगंज वाले डॉ. शुक्ला चाचा जी की कार से शहशाह आश्रम आ गई। गुरुमहाराज के आते ही मैं इतनी खुश हो जाती थी कि स्कूल छोड़कर उनके साथ ही हर समय रहती। महाराज जहाँ जाते उनके साथ जाती। डी.ए.वी. कालेज के एक सज्जन नाम मुझे याद नहीं मैं महाराज के साथ उनके घर गई गुरुमहाराज का स्वागत किया गया। वहाँ महाराज ने मुझसे कहा- गंगा स्त्रोत गाओ। मैंने कहा इलाहाबाद में आपके साथ गया था फिर कभी नहीं दोहराया मुझे याद नहीं है। महाराज बोले जितनी आती है उतना ही गाओ- मैंने गाना शुरू किया। गुरुमहाराज की कृपा से पूरी गंगा स्त्रोत मैंने गा लिया। यह है गुरु की कृपा और महिमा इसे याद करके सच में रोमांचित हो जाती हूँ।

तीन लोक नौ खण्ड में, गुरु से बड़ा न कोय।  
कर्ता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय।।



वह दिन जब महाराज जी वहीं थे एक सज्जन ने गुरुमहाराज से वस्त्रदान करने की इच्छा व्यक्त की। गुरुमहाराज ने मेरी ओर देखा और बोले- Come here come here मैं उनके पास गई, बोले 'जरसी लोगी या धोती' मैं बोली - 'कुछ नहीं चाहिए' महाराज ने पुनः यही वाक्य दोहराया और मैंने यही जवाब दिया। महाराज ने माँ की ओर देखकर कहा 'इससे कहो, माँ ने मुझसे कहा- 'जो चाहिए बता दो' मैंने कहा - 'साड़ी लेकर क्या करूँगी अभी छोटी हूँ, जरसी लूँगी।' गुरुमहाराज ने उनसे लाल रंग की साड़ी और जरसी लाने को कहा। दूसरे दिन दोपहर में वह सज्जन मेरे लिए लाल रंग की साड़ी और जरसी लाए। करीब १२ बजे गुरुमहाराज ने मुझसे फूल तोड़कर लाने के लिए कहा मैं बगीचे से नारंगी रंग के फूल लेकर आई। महाराज ने मेरे हाथ में कुछ फूल रखे फिर उन सज्जन से वस्त्र रखने को कहा फिर फूल चढ़ाए और प्रणाम किया। तत्पश्चात् शुक्ला चाचा जी की कार से महाराज जी आदि गंगा स्नान करने गोमती जी तक गए मैं भी महाराज जी के साथ गई और मैंने भी गोमती स्नान किया। आज भी मैं इस

घटना व दृश्य की याद करती हूँ कि मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ तो मेरा हृदय खुशी से गद्गद् हो उठता है।

जीवन में जब भी मेरे ऊपर कोई संकट आता है तो मैं महाराज जी से बोलती हूँ महाराज मैं आपकी प्यारी बेटी हूँ मेरे साथ ऐसा नहीं हो सकता। उस समय गुरुमहाराज का फोटो जिसमें वह मुस्करा रहे हैं और मेरे पूजागृह में है देखकर ऐसा लगता है मानों कह रहे हों Why you are worried मैं हूँ और उस समस्या का निराकरण स्वतः हो जाता है। गुरु महाराज की कृपा जैसी हम पर बरस रही है। जीवनभर बरसती रहे। यही एक मात्र अभिलाषा है।

गुरुदेव शरणम् गुरुदेव शरणम्।  
गुरुदेव शरणम् शरण्ये॥  
गुरुकृपा हिं केवलं, कृपा हि केवलम्।  
कृपा हिं केवलम्, शरण्ये॥  
गुहावासी शरणं, गुहावासी शरणं,।  
गुहावासी शरणं, शरण्ये॥  
गुरुकृपा हि केवलं, कृपा हि केवलम्,।  
कृपा हि केवलं, सदगुरु देव॥

□□

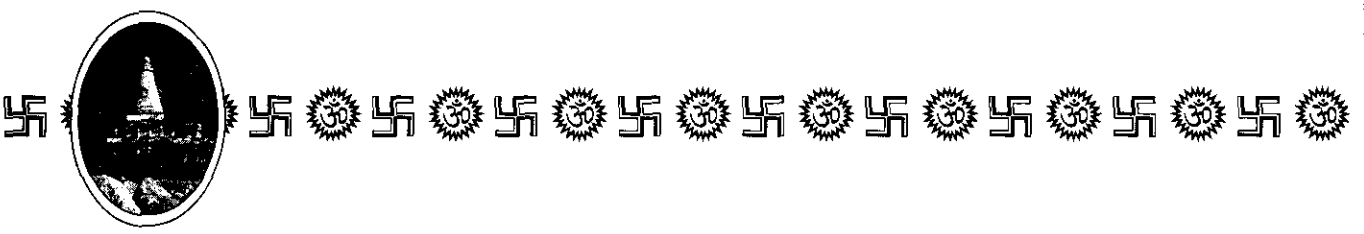
## मेरी अभिलाषा

- उषा

गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ,  
आपके चरणों में नित बैठी रहूँ॥  
पूजा की विधि मैं नहीं कुछ जानती,  
यूँ ही भक्ति आपकी करती रहूँ॥  
गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ।  
जप न तप साधन का मुझको ज्ञान है,  
आपका बस नाम मैं रटती रहूँ॥  
बीच भव सागर में नैया फँसी रही।  
नाथ आकर पार कर दो तुम मुझे।  
भव से बेड़ा पार कर दो हे गुरु।  
आपका बस नाम मैं रटती रहूँ।  
गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ॥  
आपका नाम मैं रटती रहूँ।  
आपका नाम मैं रटती रहूँ।  
आपका नाम मैं रटती रहूँ।

गोद में तेरी मैं यूँ ही बैठी रहूँ।  
आपका बस ध्यान मैं करती रहूँ।  
गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ॥  
देख इस कौतुक भरे संसार को।  
मन न बहके ऐसी मति दे दो प्रभु।  
यूँ ही भक्ति आपकी करती रहूँ।  
आपके चरणों में नित बैठी रहूँ।  
गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ॥  
मृत्यु आकर जब खड़ी हो सामने।  
ध्यान में मेरे तुम्हीं रहना प्रभु।  
मेरी अतिम प्रार्थना बस है यही।  
आपका नाम मैं रटती रहूँ।  
गुरु मैं तेरी वन्दना करती रहूँ॥  
आपका नाम मैं रटती रहूँ।





## गुरु महाराज और स्वामी जी

— सतीश कुमार

स्वामी चैतन्यानन्द जी से मेरा प्रथम परिचय मेरी पत्नी श्रीमती पूनम के ननिहाल में मेरी सगाई के समय हुआ था। स्वामी जी यहाँ पर वर्ष में एक बार आते हैं, क्योंकि यह गुरु महाराज के नाम से शुरु किये गये ट्रस्ट का रजिस्टर्ड आफिस भी है। स्वामी जी से प्रथम भेंट बड़ी औपचारिक थी। अतः मैं उनसे कोई खास प्रभावित न हो सका। ऐसा नहीं था कि मैं कोई नास्तिक था, परन्तु शुरु में ऐसा कोई कारण नहीं था कि वह मेरे आकर्षण का बिन्दु बन सकें।

सामान्यतः विरासत स्वरूप कुछ चीजें अपने परिवार से ही मिलती हैं,

किन्तु गुरु महाराज के जीवन का परिचय मुझे मेरी ससुराल के माध्यम से हुआ। वैसे तो मेरी पत्नी के नाना-नानी गुरु महाराज के शिष्य थे किन्तु मेरे श्वसुर की शादी के बाद से वे गुरु महाराज के सानिध्य में आये और उनके शिष्य बने। उनकी गुरु महाराज, स्वामी जी एवम् वशिष्ठ गुहा में विशेष श्रद्धा थी। विवाह के बाद मैं पहली बार अपने माता-पिता एवं पत्नी के साथ वशिष्ठ गुहा गया था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं पहली बार वहाँ जा रहा था तो मैंने अपनी पत्नी से कहा था कि मैं यहाँ तुम्हारे कहने से जा रहा हूँ

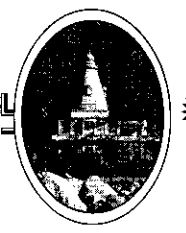


किन्तु मुझे बार-बार जाने के लिए दबाव न डालना। परन्तु पहली बार में ही वशिष्ठ गुहा एवं स्वामी जी ने मुझे अपनी ओर ऐसा खींचा कि तब से लगभग हर वर्ष हम आश्रम जाने लगे। कई बार यदि किसी कार्य से मैं रुड़की या सहारनपुर जाता तो भी आश्रम चला जाता।

वशिष्ठ गुहा गंगा से करीब 100-150 मीटर की दूरी पर है। आश्रम से गंगावलोकन का आनन्द भी आता है। कई बार लोग गंगा नदी में पैर डालकर भी बैठ जाते हैं और गंगा के ठण्डे पानी का आनन्द लेते हैं। यहाँ मेरे आकर्षण का कारण एक और यहाँ

की गुफा है जो न केवल मुझे हमेशा नई ऊर्जा प्रदान करती है बल्कि मेरे जीवन में कई नई उमंग भी भरती रहती है तथा सकारात्मक सोच भी देती है। कितना भी विचारों से उथल-पुथल हो या मन उद्विग्न हो या परेशानी हो मुझे वहाँ हमेशा शान्ति मिलती है एवं दूसरी ओर है स्वामी जी का अपनत्व।

वैसे तो आश्रम आने पर तमाम भक्तों द्वारा गुरु महाराज के बारे में नई-नई जानकारियाँ एवं कथाएँ सुनने को मिलती थीं, किन्तु स्वामी जी के सानिध्य में रहने और



गुरु महाराज के प्रति उनके समर्पण का वृत्तांत जानने के बाद गुरु महाराज के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त करने की इच्छा बढ़ती गयी, यहां आने के कई वर्षों के बाद मुझे स्वामी निर्वेदानन्द जी की पुस्तक "At the feet of My Guru" पढ़ने को मिली जिससे मुझे गुरुमहाराज के तपस्वी जीवन की कुछ घटनाओं का ज्ञान हुआ।

मेरे कुटुम्ब के सभी सदस्य कभी न कभी वशिष्ठ गुहा जरूर गये हैं। गुहा प्रवास की अवधि में मैं वहां रखी पुस्तकें पढ़ा करता था। गंगा में स्नान करना मुझे अच्छा लगता है इसलिए जितने दिन वहां रहता, गंगा में स्नान जरूर करता। गंगा स्नान करके पूजा में शामिल होने के बाद मैं सामान्यतः गुहा के अन्दर जरूर बैठता और योग साधना की कोशिश करता।

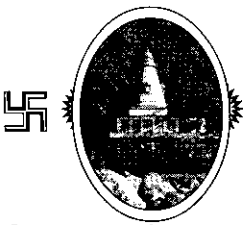
एक बार मेरी चचेरी बहन अंशू भी मेरे साथ वशिष्ठ गुहा आयी। उसने स्वामी जी को, गुरु महाराज की, मलयालम भाषा में रचित आत्मकथा "ईश्वर कारुण्यम्" का अंग्रेजी अनुवाद की गयी पुस्तक "The Story of Divine compassion" किसी भक्त को देते हुए देखा तो उसने भी एक प्रति स्वामी जी से मांगी। स्वामी जी ने उसकी एक प्रति उसे दे दी। मेरे द्वारा उस पुस्तक की प्रति मांगने पर उन्होंने कहा कि इनके पढ़ने के बाद तुम इसे पढ़ लेना। इस पुस्तक को मेरी बहन ने पढ़ने के बाद मुझे सौंपते समय गुरु महाराज के बारे में कुछ विचार भी व्यक्त किये थे। मैंने जब यह पुस्तक पढ़ी तो इसमें 4 पेज कम थे, जिसकी सूचना पूर्व से ही मेरी बहन ने मुझे दे दी थी। अतः मेरी पत्नी के मामा श्री हरि कृष्ण श्रीवास्तव जो गुरुमहाराज एवं स्वामी जी के अनन्य भक्त हैं, से इस पुस्तक की प्रति प्राप्त कर पूरी पुस्तक एक बार पुनः पढ़ी। यह वर्ष 2005 की बात है। इसे पढ़कर गुरुमहाराज के प्रति अगाध श्रद्धा की भावना पैदा हो गयी। पुस्तक पढ़ते समय मैंने इसकी आमुख कथा "Preface" में पढ़ा कि ट्रस्ट इस पुस्तक का हिन्दी रूपान्तरण शीघ्र कराना चाहता है अतः मैंने अपने अलग आश्रम प्रवास में स्वामी जी से वार्ता कर इसका हिन्दी अनुवाद करने की

अनुमति मांगी, स्वामी जी ने मुझे इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद करने की अनुमति प्रदान कर दी।

इसके बाद मैं "The Story of Divine compassion" के हिन्दी अनुवाद में जुट गया। लगभग 5-6 माह के पश्चात् मैं इसका हिन्दी अनुवाद लेकर स्वामी जी के पास जा पहुंचा तथा पुस्तक में मलयालम भाषा में तथा संस्कृत भाषा के पद्य जो अंग्रेजी में लिखे गये थे को क्रमशः हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में परिवर्तित करने का कार्य उनके सहयोग से किया तथा पुनः एक बार हिन्दी अनुवाद उनके सम्मुख प्रस्तुत किया। स्वामी जी ने समय निकाल कर 2-3 अध्याय पढ़कर मुझसे कहा कि इस अनुवाद में कोई स्वाद नहीं है। उनका तात्पर्य भाव यानि रस से था। मैं थोड़ा अनमना सा हो गया था।

जब मैं वशिष्ठ गुहा से चलने लगा तो स्वामी जी ने मुझसे कहा कि तुम गुरु महाराज द्वारा मलयालम में रचित आत्मकथा "ईश्वर कारुण्यम्" का हिन्दी अनुवाद करो तभी यह सरस एवं सजीव लगेगा। उस समय स्वामी जी के पास गुरु महाराज की मलयालम रचित पुस्तक की मात्र एक प्रति थी जो वह किसी को देना नहीं चाहते थे। अतः स्वामी जी के एक शिष्य एवं गुरुमहाराज के भक्त श्री मिश्रा जी ने ऋषिकेश से इस पुस्तक की फोटोप्रति करवा कर मुझे कोरियर के माध्यम से लखनऊ भेजा।

मुझे मलयालम नहीं आती है, अतः मेरे लिए पहला प्रश्न यह था कि मैं इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कैसे करूं। अतः मैंने अपने एक मित्र श्री विश्वनाथ बाजपेयी, जो वरिष्ठ भूगर्भ शास्त्री हैं, से मदद मांगी, क्योंकि मुझे यह ज्ञात है कि भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण संस्थान आलइण्डिया सर्विस है और और इस संस्थान में प्रत्येक प्रान्त के लोग कार्य करते हैं। उन्होंने केरल निवासी डा. बीजू जॉन जो इस संस्थान में वरिष्ठ रिसर्च सहायक के पद पर कार्यरत थे, से मेरी भेंट करवायी। वार्ता करने के बाद वे मुझे सहयोग करने को तैयार हो गये। मैं इस कार्य के लिये उनके घर जाया करता था इस कार्य में उनके अतिरिक्त उनकी पत्नी ने भी सहयोग



किया। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण संस्थान में कार्य करने के कारण वे अक्सर विभागीय कार्य से बाहर चले जाते थे और कभी-कभी मैं भी अपने विभागीय कार्य से बाहर रहता था। अतः अनुवाद के कार्य को यथा वांछित गति नहीं मिल पा रही थी। इसी बीच अपने छोटे भाई के बेटे की जन्मदिन पार्टी में मैं सम्मिलित हुआ तो वहां मेरी भेंट उनके मित्र श्री गोपीनाथ नायर से हुई जो कानपुर की एक निजी फर्म में कार्य करते थे अतः इस कार्य के लिये मैंने उनसे सहयोग मांगा, जिसके लिये वे सहर्ष तैयार हो गये। अतः अब मैं समय निकाल कर उनके पास जाने लगा। इस कार्य में उनकी पत्नी श्रीमती अजिता नायर ने भी काफी सहयोग दिया। इस प्रकार मलयालम भाषा से किये जा रहे अनुवाद को गति मिली।

पूरी पुस्तक तैयार कर मैं पुनः स्वामी जी के पास गया। स्वामी जी ने इस पुस्तक को पुनः एक बार सुना और यथोचित संशोधन भी किये। पूर्ण संशोधन के बाद जब मैंने उसका अन्तिम स्वरूप देखा तो मुझे स्वामी जी द्वारा पूर्व में की गई टिप्पणी की सार्थकता का अनुभव हुआ।

गुरु महाराज ने अपनी आत्मकथा वर्ष 1955 में पूर्ण की थी। इस कारण आत्मकथा में गुरुमहाराज के वर्ष 1955 तक का वृत्तांत था। स्वामी जी ने गुरुमहाराज के पूर्ण जीवन को इसमें समाहित कर इस पुस्तक को पूर्ण करने को कहा ताकि सभी भक्त गुरुमहाराज के पूरे जीवन से परिचित हो सकें। इसके लिए उन्होंने मुझे स्वामी निर्वेदानन्द रचित पुस्तक " **The life of Swami Purushottamanand** " तथा डा. मोहन बी. बांडे रचित पुस्तक " वशिष्ठ गुहा के स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज " पढ़ने को दी तथा गुरु महाराज के 125वें जन्म महोत्सव पर प्रकाशित स्मारिका भी दी। इन सभी पुस्तकों में वर्ष 1955 से गुरु महाराज की महा-समाधि तक की अवधि के सभी कथानक को इस पुस्तक में स्थान देकर, एक नया अध्याय जोड़कर पुस्तक को पूर्ण किया और इस पुस्तक का नाम भी " ईश्वर कारुण्यम् " रखा। पुस्तक को तैयार कर एक बार मैं पुनः

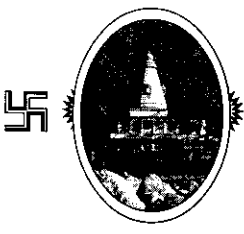
स्वामी के पास पहुंचा। स्वामी जी को मैंने एक-एक करके सभी अध्याय सुनाये, स्वामी जी ने विचार विमर्श कर यथोचित संशोधन भी किये। मुझे याद है कि आश्रम से जाने के एक दिन पहले तक काफी हद तक कार्य पूर्ण हो चुका था फिर भी कुछ अध्याय अभी शेष थे, इस कार्य को पूर्ण करने के लिए स्वामी जी रात्रि के दो बजे तक मेरे साथ जगे। यह स्वामी जी का आशीर्वाद ही था कि मैं मलयालम रचित गुरु महाराज की आत्मकथा " ईश्वर कारुण्यम् " का हिन्दी रूपान्तर कर सका।

" स्वामी जी के एक गुण ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया है और वह है उनका अपनत्व। स्वामी जी, कभी भी, कोई आये, उसको भोजन के लिए जरूर पूछते हैं चाहे वह स्वयं अस्वस्थ ही क्यों न हों। जाते समय एक-एक व्यक्ति को प्रसाद देना, उसको भोजन के लिए पूछना, यहां तक कि वह आश्रम से स्टेशन तक कैसे जायेंगे की भी चिन्ता उन्हें रहती है। रात्रि में स्वामी जी दवा खाने के लिए थोड़ा सा दूध लेते हैं। उस समय सभी को दूध दिया जाता है। किसे बिना शक्कर के और किसे शक्कर के साथ दूध चाहिए और किसी ने दूध क्यों नहीं लिया, तो क्या कारण है? यहां तक स्वामी जी निगरानी रखते हैं ऐसा स्नेह केवल एक माता ही दे सकती है। मेरा मानना है कि वह बहुत बड़े सन्यासी हैं जिनके लिए हर व्यक्ति पुत्रवत् है। ऐसा आतिथ्य तो कभी-कभी हम गृहस्थ भी नहीं कर पाते। उनका व्यवहार सबके प्रति मातृ एवं पितृवत् रहता है। माता और पिता दोनों का स्नेह देना ईश्वरीय गुण है जो किसी महामना से ही संभव है ऐसे ही गुण से सम्पन्न हैं हमारे स्वामी चैतन्यानन्द जी। आज इस अवसर पर ध्यानकर, मैं सोचता हूं कि जैसा स्नेह उन्हें अपने गुरु से प्राप्त हुआ वैसा ही वे सबको दे रहे हैं। अथवा ऐसे गुण को उन्होंने अपने इस शिष्य से खोज लिया जिसे आश्रम की बागडोर सम्भालनी थी।

मैं इसे गुरु महाराज का आशीर्वाद कहूं, भवितव्यता या ईश्वर की प्रेरणा, क्या कहूँ? किन्तु ईश्वर की उस सत्ता को नमन करता हूं जिसका आशीर्वाद मुझे प्राप्त है। मेरे और







मुझे क्या पता था कि बाल स्वभाव के कारण जिस साधू से अनजाने में आशीर्वाद प्राप्त किया था, उनकी आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद करने एवं उनके तपस्या स्थल वशिष्ठ गुहा में जाकर रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो रहा है।

गुरु महाराज की महा समाधि की 50वीं पुण्यतिथि पर गुरु महाराज की आत्मकथा के अध्याय-6 " गुरु सामीप्य " का यह अंश मैं विशेष रूप से उद्धृत करना चाहता हूं। क्योंकि किसी भी गृहस्थ को सन्यास लेने से पूर्व इसे समझने और पालन करने की आवश्यकता है। यह विचार गुरुमहाराज के गुरु, स्वामी निर्मलानन्द जी द्वारा व्यक्त किये गये हैं, जो उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के जीवन की कार्य शैली से सम्बन्धित हैं।

" सन्यासी को सारे कार्य करने का तरीका आना चाहिये। जिन लोगों को अपना कार्य अच्छी तरह करने की योग्यता नहीं है वे लोग सन्यास की स्थिति को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। शायद तुम सभी लोगों के दिमाग में श्री राम कृष्ण के बारे में यह धारणा हो सकती है कि वह मूर्ख " Idiot " किसी भी कार्य को करने में सक्षम थे। तुम्हारी सन्यास के बारे में यह जानकारी हो सकती है "।

ठीक है, जैसा है, ठीक है। यह बहुत ही सक्षम और शीघ्र(कम से कम समय में) कार्य पूर्ण करने वाले व्यक्ति थे। वह हम लोगों के कार्य को बहुत बारीकी से देखते थे और डांटते थे और हमारी कमी को तुरन्त ही दूर करते हैं। जब हम लोग अपने कपड़े धोकर सुखाने के लिए टांग रहे होते थे, वे आकर हमें दिखाते कि कपड़े सुखाने के लिए कैसे फैलाये जाते हैं। जब कपड़ों को तहाने के लिये लाया जाता था तो हम बहुत सावधानी पूर्वक कैसे तह लगायी जाती है और कैसे कपड़ों के किनारे आपस में मिलाकर यह लगायी जाए कि कपड़े में कोई सिकुड़न न आये, पूरा कपड़ा एकरूपता में तह करके दिखाते थे।

यद्यपि श्री राम कृष्ण सामान्यतः ध्यान और समाधि की स्थिति में रहा करते थे, तथापि उनकी आंखें अपने चारों ओर सावधानी से प्रत्येक चीज को देखती थीं। प्रत्येक चीज की सफाई, पुछाई और चमकाई और उनको ठीक से लगाना और उन्हें उनके सही स्थान पर रखना, आंगन में झाड़ू लगाना, चावल पकाना, सब्जी काटना, इन्हें छोटा काम समझकर नहीं करना चाहिए, यदि यह सभी कार्य स्वच्छता के साथ, सुन्दरता के साथ और बारीकी के साथ कर लोगे तो अन्य कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर उसे अधिक क्षमता से निखार कर प्रशंसा योग्य तरीके से कर लोगे।

क्या तुम अनुमान लगा सकते हो कि हम लोगों को प्रशिक्षण प्राप्त करते समय कितनी डांट पड़ती थी? एक बार मेरे एक गुरुभाई एक लोहे का बर्तन बाजार से ले आये। मेरे गुरुभाई बहुत सीधे-साधे थे, अतः व्यापारी ने उन्हें धोखे से टूटा बर्तन दे दिया। श्री रामकृष्ण बर्तन देखकर उसी क्षण सब कुछ समझ गये। अपने हाथ में बर्तन लेकर और उसे विभिन्न स्थानों पर थपथपाकर, उन्हें दिखलाया, कि आवाज सुनकर, कोई भी जान सकता है कि बर्तन टूटा है। उन्होंने गुरुभाई को खूब फटकार कर बाजार वापस भेजा और उस बर्तन को बदलकर अच्छा बर्तन लाने के लिए कहा।

मैंने सब कुछ ध्यानपूर्वक सुना और धीरे से दिमाग में बैठा लिया और धीरे-धीरे विचारों में एक परिवर्तन शुरु हो गया। क्या वह झूठा स्वाभिमान नहीं है, जो सारे कष्टों का कारण है? अब मेरी पक्की धारणा है कि स्वामी जी की फटकार में अच्छी सलाह है के माध्यम से अहंकार तथा अक्षमता को पूर्ण रूप से समाप्त करने के गुण थे।

कबीर की यह पंक्ति अनायास ही याद आ गयी—

गुरु कुम्हार सिस कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।

अन्तर हाथ सहार दे, बाहेर बाहेर चोट।।

□□





## लखनऊ का पावन तीर्थ

### शुक्ला घाट (श्री पुरुषोत्तमानन्द धाम)

— योगेश प्रवीन

लखनऊ वैश्विक स्तर पर एक नामचीन नगर है, सांस्कृतिक विरासतों का शहर है और उत्तर प्रदेश की राजधानी भी है। इस नगर के बीच में आदि गंगा 'गोमती' की अविरल धारा आदि काल से प्रवहमान हैं। अध्यात्म, सदाचरण तथा स्नेह सौहार्द की इस नगरी का एक गौरव यहां धेनुमती तट पर स्थित ऐतिहासिक शुक्ला घाट है जहां अनेकानेक बार हिमालय घाटी स्थित वशिष्ठ गुहा तपोभूमि के श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज अपने लखनऊ प्रवास में आकर ठहरते थे। लगभग एक शताब्दी पूर्व उड़ीसा की मन्दिर शैली में निर्मित इस पावन शुक्ला घाट को वशिष्ठ गुहा आश्रम के बाद हम महाराज जी का दूसरा आश्रम भी कह सकते हैं इसे महातीर्थ की संज्ञा दे सकते हैं।

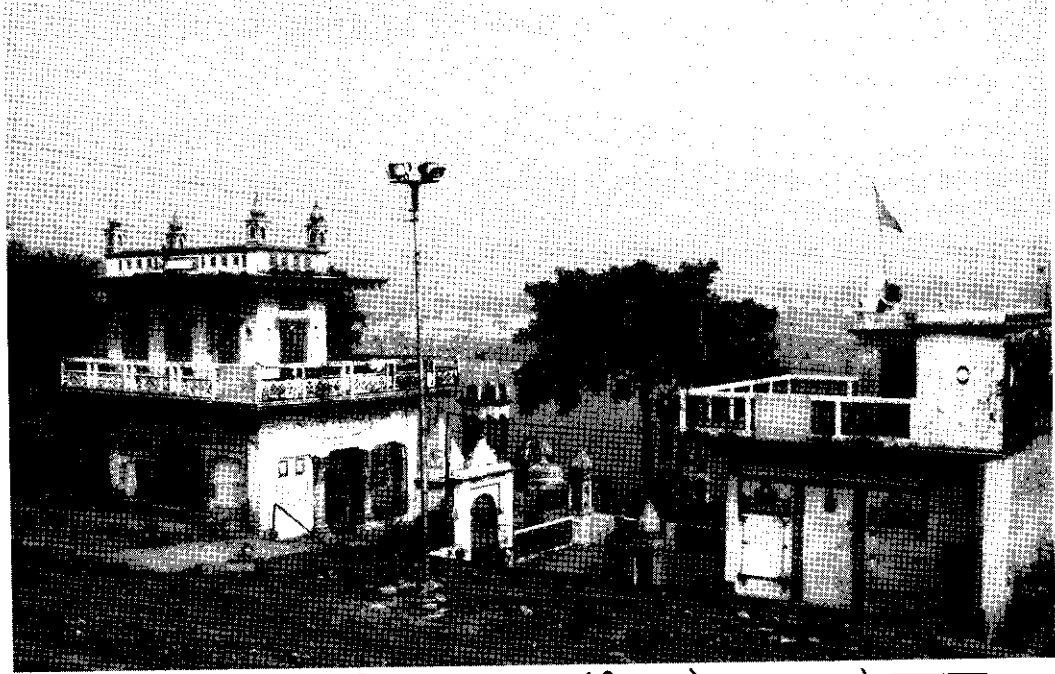
स्वामी जी महाराज जब जब लखनऊ पधारे उन्होंने इसी भाव भूमि तथा रमणीक स्थल को अपनी कृपा से कृतार्थ किया और यहीं से शहर के तथा बाहर के हजारों हजारों लोगों ने उनको अपने सान्निध्य में पाया। सभी ने उनका अलौकिक दर्शन, उनका प्रेम-प्रसाद, हृदयंगम स्वर्ण-शब्द मधुर प्रवचन तथा जीवन राह को प्रकाशमान करने वाला दिव्य आलोक यहीं से प्राप्त किया। गोमती तट पर यहां होने वाले प्रभुपूजन, हवन, रामचरितमानस, गीता-पाठ, भजनकीर्तन, सत्संग-श्रवण, समभाव सामूहिक भोजन आयोजन

अविस्मरणीय हैं। लखनऊ का अभिभूत जनमानस उनकी अनमोल अनुकम्पा को पीढ़ी दर पीढ़ी आज भी अपने मुदित मन में संजोए हुए हैं। इस प्रभा-धाम में 'गोमती' की दुर्लभ मूर्ति है तथा यहीं महाराज जी ने हंस वाहिनी माता सरस्वती की स्थापना ऊपरी मंजिल पर की थी। उसी बहाने ज्ञान, भक्ति कला, संगीत साहित्य के महाकेन्द्र लक्ष्मणपुर को नवगति-नवचेतना सौंपी थी। जो अब हमारी धरोहर है।

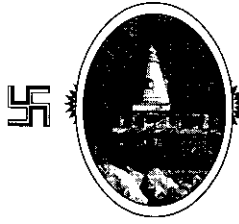
वर्तमान में जब हम सब परम पूज्य श्री १००८ स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज की महासमाधि-अर्द्धशती मना रहे हैं, शुक्ला घाट को श्री पुरुषोत्तमानन्द धाम का नाम दिया जा रहा है।

### लखनऊ में प्रथम आगमनः

श्री श्री महाराज जी सन् १९३६ में केरल की यात्रा



गोमती के तट पर स्थित शुक्ला घाट (श्री पुरुषोत्तमानन्द धाम), लखनऊ



से वापस आकर पहले तो गोरखपुर गीता प्रेस गए फिर वहाँ से लौटकर महेश प्रसाद स्ट्रीट मौलवीगंज के श्री ईश्वरी दयाल जी के आग्रह पर लखनऊ आये।

सिटी स्टेशन पर ईश्वरी बाबू ने श्री महाराज जी की सादर अगवानी की इससे पहले उन्होंने कभी उन दिव्य पुरुष को देखा नहीं था। ये सर्दी का मौसम था इस तीन दिवस के लखनऊ प्रवास में वे दो दिन अमीनाबाद गूंगे नवाब पार्क स्थित श्री राम कृष्ण मिशन आश्रम में ऊपर दुमंजिले पर ठहरे। यहां अनेक भक्तजनों से उनका सम्पर्क हुआ इसके बाद वे लखनऊ से सीतापुर पहुंचे जहां सीतापुर के नामी वकील श्री सन्त नारायण हरकौली जी तथा अन्य प्रमुख लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ततपश्चात् काठमाण्डू नेपाल पशुपति नाथ मंदिर के दर्शन करने के उपरान्त स्वामी जी रक्सौल से लखनऊ आये महाराज जी की आत्मकथा में जिसका वर्णन इस प्रकार है:

“लखनऊ में अधिकतर मैं शुक्लाघाट में रूकता था। लखनऊ के एक धनी ज़मींदार श्री देवीप्रसाद शुक्ला ने अपनी स्वर्गवासी, प्रिय पत्नी की स्मृति में गोमती के किनारे एक दो मंजिला भवन निर्मित करवाया था। वे मेरे मित्र और भक्त बन गये। वे शुभ कार्यों में प्रसन्नता पूर्वक धन खर्च करते थे। उनके घर प्रतिदिन धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान हुआ करते थे। रूद्र शिव की अभिषेक पूजा, गीता का पाठ, श्रीमदभागवत् का पारायण पाठ और गीता ज्ञान के कार्य, श्रद्धा और विश्वास के साथ मेरी देख रेख में बहुत निपुणता के साथ सम्पादित किये जाते थे। उन्होंने एक



शुक्ला घाट पर श्री गुरु महाराज जी

अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना की थी बाद में वह हाईस्कूल हो गया। मैंने हाईस्कूल के भवन का शिलान्यास किया था और बाद में उसके शुभारम्भ की कार्यवाही भी मेरे द्वारा सम्पन्न हुई। जब कभी भी मैं लखनऊ में रहता, मैं विद्यालय जाता तथा छात्रों को सलाह के कुछ शब्द जरूर कहता, अब वह विद्यालय मन्सादीन शुक्ला इण्टर कालेज है। जब भी मैं शुक्ला घाट में रूकता था, भजन, कीर्तन, पाठ पारायण पूजा और हवन नियमित रूप से होता था।”

सन् १९५२ में जब महाराज जी बम्बई से वापस ऋषिकेश जा रहे थे तो लखनऊ में कुछ दिन रूके। इसी प्रकार सन् १९५३ के महाकुम्भ में महाराज

जी तीर्थराज प्रयाग संगम पर थे वहां उन्हें बुखार हो गया था और दर्द भी था। इलाहाबाद से वो सीधे लखनऊ आ गये थे। लखनऊ में गोमती तट के शुक्ला घाट पर ठहर कर महाराज जी ने स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया और फिर महाशिवरात्रि का पर्व यहीं अपने भक्तों के साथ मनाया।

वर्ष १९५४ में भी इलाहाबाद से कानपुर होते हुए स्वामी जी लखनऊ शुक्ला घाट पर पधारे तथा कुछ दिन सब को आनन्दमग्न कर के फरवरी में गुहा वापस चले गये। १९५७ में दिल्ली से श्री महाराज जी लखनऊ आये और फिर यहां से इलाहाबाद चले गये।

लखनऊ के प्रसिद्ध डाक्टर ए.एन.श्रीवास्तव आर्थोपैडिक सर्जन ने अपने संस्मरण में लिखा है:





“मैं श्री श्री पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज से १९५६ में पहली बार मिला और उनकी कृपा की छत्रछाया में आया और तब से सदा ही उनके आर्शीवाद से परिपूर्ण रहा हूँ।

१९५६ में हम पीली कोठी गौस नगर लखनऊ में रहने आये थे यहाँ हमें मालूम हुआ कि गुरु जी लखनऊ नवम्बर दिसम्बर १९५६ में आ रहे हैं। मैं निर्धारित समय पर शुक्ला घाट मेडिकल कालेज के पास गोमती नदी के किनारे, जहाँ स्वामी जी महाराज ठहरे हुये थे पहुँच गया। वहाँ श्री ईश्वरी दयाल जी जो अनन्य भक्त थे, पहले मिले उनके द्वारा श्री सीताराम जी को सूचना भेजी गयी वह मुझे एक कुटिया के अन्दर ले गये। संध्या का समय था वहाँ मैंने एक दिव्यमूर्ति साक्षात् रूप में बैठी देखी। मुख पर तेज चमक रहा था। मैं पहली ही बार में बहुत प्रभावित हुआ। मैंने २०-२५ मिनट में ही न जाने कितने प्रश्न पूछ डाले। हर बात का उत्तर एक मुस्कान मिश्रित स्नेहयुक्त दृष्टि दिया करती थी।”

१९५७ में दिल्ली से श्री महाराज जी लखनऊ आये और फिर यहाँ से इलाहाबाद चले गये।

सन् १९५८ में लखनऊ वाले तार पत्र संदेश भेजकर उनसे लखनऊ आने के लिए विशेष आग्रह कर रहे थे। उन लोगों की हार्दिक इच्छा थी कि श्री गुरु महाराज जी शुक्ला घाट पर बनवायी गयी एक नवनिर्मित कुटीर में कुछ दिन निवास कर उसे पावन करें। अन्त में भक्तों की इच्छा पर श्री गुरु महाराज जी नववर्ष के प्रथम दिन गुहा से चलकर दिल्ली पहुँचे और वहाँ से वह लखनऊ आ गये। भक्तगण प्रसन्न थे। वे यहां तीन सप्ताह रुके। इस बीच भागवत पाठ का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर जानकी रमण जी भी उनके दर्शन करने लखनऊ आये फिर श्री गुरु महाराज जी के कहने पर वे भागवत पाठ करने के लिये रुक गये तथा आदेश मानकर श्रद्धापूर्वक पाठ कर अपने दायित्व का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। पूरे सप्ताह 'व्यास के रूप में' भागवत पढ़ना तथा उसका अर्थ स्पष्ट करना यह कार्य किया।

वर्ष १९६० में अर्धकुम्भ इलाहाबाद से लौटकर लखनऊ में एक सप्ताह रुक कर महाराज जी फरवरी प्रथम सप्ताह में वापस गुहा चले गये।

फिर २५ जून १९६० में गुहा से लखनऊ में ६-७ सन्यासी ब्रह्मचारी शिष्यों के साथ आये और शुक्लाघाट पर ही पड़ाव किया। यहीं ८ जुलाई को गुरु पूर्णिमा को उत्सव हुआ जिसमें सीतापुर, बाराबंकी, और आसपास के लोग आये फिर उसी दिन महाराज जी मद्रास के लिये प्रस्थान कर गये।

मद्रास से वापसी में महाराज जी लखनऊ आकर ३ दिन ठहर कर ६ सितम्बर १९६० को ऋषिकेश पहुँचे।

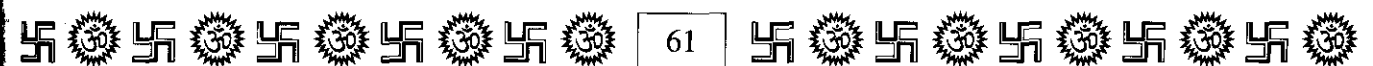
पुनः ३ दिसम्बर १९६० को गुहा से चलकर स्वामी जी लखनऊ पहुँचे लेकिन यहाँ गुजरी हुई बाढ़ के कारण शुक्लाघाट रहने योग्य नहीं था इसलिये वे शहशाह घाट आश्रम गोमती नदी तट पर रुके और एक सप्ताह ठहरे।

रोहिणी देवी चुन्नी देवी ट्रस्ट के संरक्षक शुक्ला घाट के सन्दर्भ में कहते हैं कि:

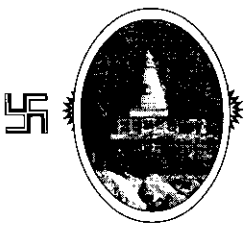
‘लखनऊ का शुक्ला घाट ऋषिकेश के महात्मा स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज की तपोस्थली है जो उन्हीं की देख रेख में एक महादानी, धर्मात्मा एवं ऐतिहासिक पुरुष स्वर्गीय पण्डित देवी प्रसाद शुक्ला जी ने निर्मित किया था। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुक्ला जी कई बार म्युनिसिपल कमिश्नर एवं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन भी रहे। शुक्लाघाट के मन्दिर उड़ीसा के मन्दिरों की तर्ज पर बनाये गये हैं। महाराज जी ने स्वयं उपस्थित रह कर इसको भव्य रूप प्रदान किया। स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी जब तक ब्रह्मलीन नहीं हुये तब तक प्रत्येक वर्ष आकर यहीं पर ठहरते थे। यज्ञ, हवन, भण्डारा करके पुनः भ्रमण पर निकल जाते थे।

इस वर्ष जब कि श्री श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज की महासमाधि अर्द्धशती है, शुक्ला घाट परिसर को 'श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द धाम' नाम दिया जा रहा है।

□□







## गुरु दक्षिणा

—योगेश प्रवीन

हे पुरुषोत्तम, हे चिदानन्द, हे स्वामी  
हे दयामूर्ति, करुणामय, अन्तर्यामी  
हे दिव्य ज्योति, जग के अज्ञान तिमिर में  
अविनाशी सदा रहो, इस मन मन्दिर में  
सुन लो अब व्याकुल विनय, प्रणव का स्वर दो  
सद्भाव सनातन रहें, भक्ति से भर दो  
चे चरण कमल तज और कहां अब जाऊं  
हो कृपा, अभय का दान आप से पाऊं  
जड़ जीवन में चेतनता भरने वाले  
पीयूष सिंधु, भव के दुख हरने वाले  
नइया अगाध नीरधि से पार करो अब  
ये सुमन समर्पित है, स्वीकार करो अब,

## समर्पण

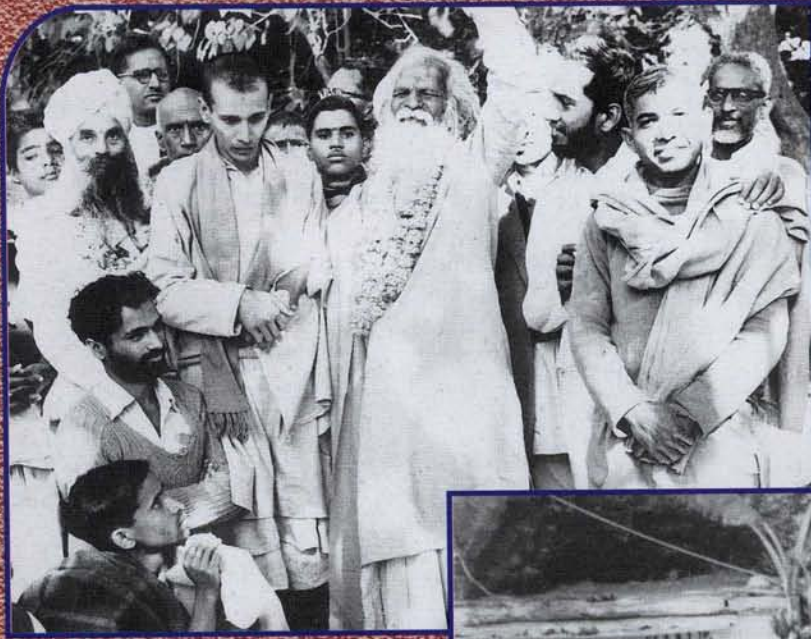
—एक शरणागत

अपना जीवन बोझ  
तुम्हें सौंपने की आशा में  
खड़ा था दूर कहीं मैं,  
इच्छा प्रबल थी  
पर साहस नहीं था  
चरण छूने का 'तुम्हारा'  
इस सोच से उबरा भी नहीं था  
'तेरा' इशारा

फिर हुआ क्या ?  
हाँ, बिल्कुल यही तो  
मेरा मन 'तेरे' चरण में  
छोड़ जीवन बोझ अपना  
आ गया 'तेरी' शरण में  
हो गया ऐसा समर्पण  
कुछ भय नहीं—संशय नहीं  
जीवन—मरण या भव—तरण में

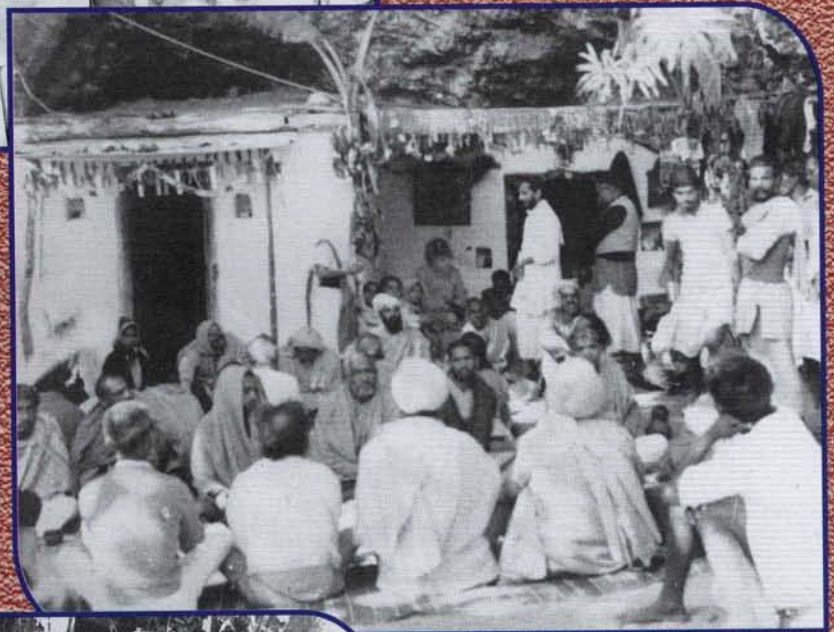






Maharaj Ji  
Seventy Ninth  
Birthday  
1st Dec.' 1957

Maharaj Ji  
Blessing  
Devotees



Maharaj Ji  
Performing  
Hawan



ॐ

मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं गरुडध्वजः ।

मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः ॥

## मंगलाशांसा

(English Translation)

श्री रामकृष्ण मठ - मिशन बेलूर, कोलकाता की एकाधिक शाखाओं में अनेक वर्षों तक समर्पित एवं समर्थ संचालक रूप से अनुष्ठित सेवा के फलस्वरूप प्राप्त चित्तशुद्धिरूप वैराग्य ही जिनका सर्वस्व था, ऐसे गुरुवर स्वामी श्री पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज के रिक्त-हस्त होकर वसिष्ठ गुफा में स्थिरवास करने से ही आपकी ईश्वर भक्ति एवं पुण्यसलिला श्री गंगा माता के प्रति भक्ति निष्ठा स्पष्ट है। अतः आपने अपने साधनाकाल में श्री गंगामाता के गुण-कीर्तन करते हुए संस्कृत भाषा में ही “गंगास्तोत्र” की रचना की जिसके आलाप के श्रवण से हर्षोल्लसित होकर वसिष्ठ गुफा के निकट आविर्भूत होकर श्री गंगा माता अपने भक्त की मंगल-कामना करती हैं :-

### गंगामाता उवाच

मङ्गलं पुरुषोत्तम ! ज्ञानभक्तिस्वरूपिणे ।

त्यागवैराग्यरूपाय तापसायास्तु मङ्गलम् ॥

May all auspiciousness accrue to you, Oh Purushottam. You are verily of the form of knowledge and devotion (jñāna and bhakti) as also an embodiment of renunciation and dispassion. Oh austere hermit, may all auspiciousness accrue to you.

घनकाननमध्यस्था वसिष्ठाख्या गुहा शुभा ।

अत्रान्तेवासिभिः साकं तपोनिष्ठाय मङ्गलम् ॥

Glory to thee who is well established in penance & austerity along with your disciples in the holy cave famed by the name of Vasishtha and placed in the midst of a dense forest.

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं भोगं बुध्वा सुदूषितम् ।

त्यक्त्वा तं तप आस्थाय स्थितस्येहास्तु मङ्गलम् ॥

You have taken to penance and meditation in this cave, having renounced all the enjoyments of both this as also the other world (Heaven) after having understood in your mind that they are all full of defects. May all auspiciousness attend on thee.

कर्म ज्ञानं तथा भक्तिः तिस्रोऽप्येताः सुसाधनम् ।

स्वाचारैः स्थापितं येन तस्मा अस्तु सुमङ्गलम् ॥

Action, knowledge and devotion are the three excellent paths (for liberation). You have established them by implementing them in your conduct in life. May all glory be to you.

कुञ्जरा बलवन्तोऽपि सिंहाद् विभ्यन्ति दुर्बलात् ।

शास्त्रवादरताश्चैवं भीतास्त्वत्तोऽस्तु मङ्गलम् ॥

Even the mighty elephants became afraid of a weak lion. In the same way, people who are engaged in arguing on the scriptures become afraid of you. May all auspiciousness be yours.

द्वैतवादिमुखानीत्यं योगवेदान्तयुक्तिभिः ।

सद्यः पिधातुं दक्षायाऽऽचार्यायास्तु सुमङ्गलम् ॥

You are expert in shutting immediately the mouths of the dualists with arguments from Yoga and Vedanta (Non dualistic philosophy). May all auspiciousness be bestowed on you, the great master.

मंगलं पद्मनाभोऽस्तु मंगलं पद्मसम्भवः ।

मंगलं गिरिजानाथो मंगलायतनं गुरुः ॥

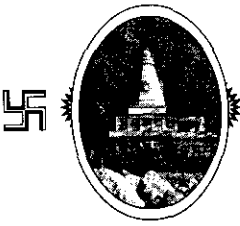
इति आनन्दपुरिकृतं मंगलषट्कं

सम्पूर्णम्

Adoration to Lord Padmanabha,  
Lord Brahma and Lord Siva,  
the Consort of Girija and to the preceptor.

(Thus the six verses composed by Sri Swami Anandapuri)

English Translation by Swami Shantanand Ji



# Teachings of Sri Swami Purushottamanand ji on Srimad Bhagawat

(Extract)

Shri Rishabhji had many sons of whom one was Bharat. He advised his sons as follows :-

"Oh, my sons! There are many animals in the world who are subjected to many difficulties and sorrows. Their object is to eat, drink and beget children only. For that they have to undergo so many difficulties. But you are men and have not to live like animals. Oh, my sons You are to do Tapasya.

What is tapasya? It means control of mind



and body. Through tapasya, your mind becomes purified. No evil thoughts will come into your mind, you will always have pure and pure thoughts and you will gain happiness- not little happiness but 'Anandam' Infinite. It is called Brahmananda.

The sons requested the father to tell them as to what should be done for getting this Infinite Anandam. Rishabhji said that the means to get it is Brihat sewa service of the great and learned. The door of mukti will be opened through the service of great men. If you mingle with females and those who are readily addicted to females, you will go to hell. That will lead you to hell.

How can great men be distinguished? They are always in the same state- balanced mind- Prashant-- always calm and in equilibrium. They hate nobody. They are angry with none. They are true friends of all. They are real sadhus. They have taken the Lord as their true friend and guide. They do not mingle with those who are mostly attached to their body, house, wife etc. They do not relish anything in the world or heaven. They have discarded all. And why does one do actions that are not good? It is only their mistake. They become blind and get attached to form and beauty. Suppose they see a beautiful figure, without thinking what it is, they suddenly go after it to please the eyes. This is not proper because it is only seeming beauty. If you go after it, you will be getting only trouble and pain.

“पराभवस्तावदबोधजातो ।  
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।।”

□□





## THE SAT-GURU

*Sri Swami Purushottamananda ji Maharaj stayed a few months at Allahabad on the banks of the Ganges in the bungalow of a devotee in 1954. A few people interested in the problems of spiritual life used to meet every day in the evening and Swami ji usually gave a talk followed by questions and answers. Notes of what was discussed were taken down regularly which has been published in the form of a booklet titled "Spiritual Talks". The passage given below is chapter X of this book.*

The word Guru is derived from two letters: 'Gu' which means darkness and 'Ru' which means dispeller. The Guru is the dispeller of darkness. All secular gurus or teachers are dispellers of darkness in a way. They give knowledge with regard to the things of the lower world. A Sat-Guru is also a dispeller of darkness but he dispels the darkness of Avidya and helps the aspirant to know Sat-the ultimate truth of existence. In learning any science or art we have to put ourselves under the guidance of a person who knows that particular science or art. In the same way if an aspirant wants to tread the path of spiritual life in order to find the Truth he has to place himself under the guidance of a Sat-Guru who has himself trodden the Path and found the Light of Truth. A teacher who knows God can alone teach you to love God and through love to know Him. You have to approach those who have drunk deep of the wine of divine love and can tell you about God from direct experience. Such a Guru is really beyond humanity although he may look like an average man. For he may be engaged in all sorts of work in the outer world, not for himself but out of sympathy for the world. He has nothing to lose or gain. He is already free. He has become God or Brahman. What a privilege it is to become a Chela of such a God-man! Such a Guru can wake up a man who is spiritually asleep provided the man follows the advice of the Guru. He can light the lamps of thousands of people who are Adhikaris. He can destroy the accumulated Vasanas of several lives as a heap of timber can be destroyed by a lighted match. But such a Guru is difficult to find.

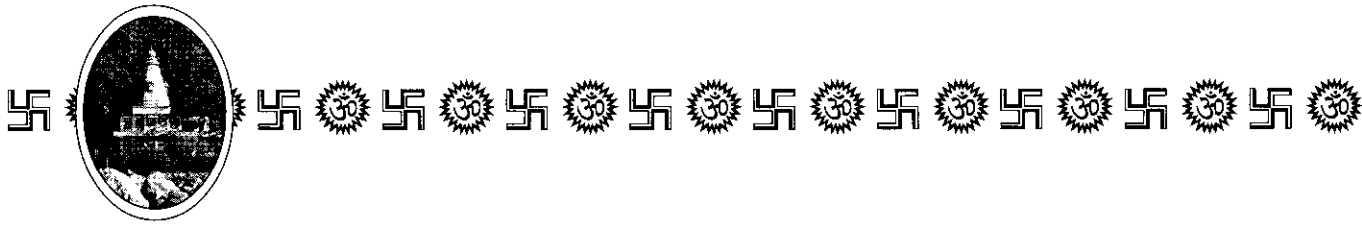
दुर्लभं त्रयमेवैतदैवानुग्रहहेतुकम् ।  
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥

It is only when the aspirant is sincere in his search and has intense desire to find God that such a Guru appears. In fact it is God who really appears in the form of a Guru. God is attracted by love alone. He is bound by love alone, nothing else.

In order that a Sadhaka may derive the full benefit of contact with such a Mahapurusha he should remember a few facts which play an important role in the Guru-Chela relationship.



In the first place, the Chela must have full faith or Sraddha in his Guru. He must take the Guru as the sole guide. He must not run from one teacher to another as many Sadhakas are in the

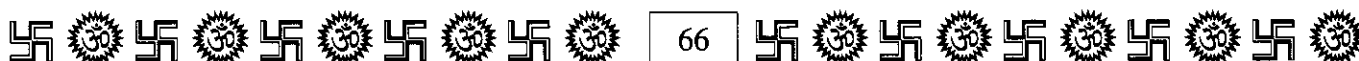


habit of doing. If a person has to dig a well in order to find water he must concentrate on one selected spot and dig persistently until the water is struck. If he changes the spot frequently and digs at different places he will never find water. It is true that in the initial stage the Chela does not know much about the greatness of his Guru as he himself is undeveloped. But as he serves the Guru with devotion and faith, and his inner vision begins to open, he acquires a direct and intimate knowledge of the real powers, love, and knowledge of his Guru. Then his devotion to his Guru is not based on faith but on direct experience and nothing can shake it. But for reaching this stage Sraddha is needed, whole-hearted devotion is needed, service is needed, complete dependence, Ananyata, on the Guru is needed. You must trust your Guru utterly and surrender all that you have to him. You must throw wide open unto him all the doors of your heart and keep nothing hidden and secret. The sun can illuminate a room only if it is open. How can it illuminate a room into which its rays can find no entrance? That is why all great Teachers have laid great stress on devotion and service. But the service must be whole-hearted, true, pure and sincere. Where the Chela has the right attitude he is slowly, steadily, but unceasingly, transformed and becomes more and more like his preceptor, the God-man.

The second important factor which plays a great part in the relationship between the Guru and Chela is personal contact. There is a stone known as Paras in Hindu mythology which turns copper into gold. But the stone must touch the copper. Keeping them apart will not produce the result. So contact between the Guru and Chela, or Satsang, is necessary. Then the disciple becomes not gold but Paras itself. It need hardly be mentioned that it is not merely physical contact but the contact of the heart and mind which brings about the transformation in the Chela. It is the attitude of the disciple towards his master, the Bhava, which determines the flow of power. Not only reverence and love are necessary but also obedience and selfless service. The Chela must

feel that all that he is getting and the progress that he is making on the path of spirituality is due to the unbounded grace of his Guru. Differences of opinion do not matter, even opposition does not matter, provided the disciple is convinced that he is fighting for a principle. The Sat-Guru who is compassionate will understand and not take offence. Rather, he will be pleased that the disciple has the courage to stand for the right. But there must be sincerity, truthfulness and determination to do the right.

There is some misconception in the minds of people about Guru-Kripa or grace. It is true that spirituality can be transmitted from the Guru to the Chela as definitely as money can be transmitted from a rich to a poor man. But this transmission is not accidental or arbitrary depending merely upon asking on the part of the Chela. The disciple has to work out his own salvation. He must develop the necessary qualifications before he can hope to get Guru-Kripa. Guru-Kripa is really the result of efforts on the part of the disciple. Effort does not mean only positive deeds of service but also includes development of the right attitude such as self-surrender. Self-surrender is not a negative quality as is generally supposed. It has tremendous power and requires great and persistent effort, but it can bring down Guru-kripa like any other effort in the field of Sadhana. In order to understand the nature of Guru-Kripa and its transmission we may take the analogy of the flow of water. Water always flows from a higher to a lower level, never in the reverse direction. So there must be humility, Deena-bhava. If one does not care for the power, or does not adopt the attitude of self-surrender, how can there be the flow of power? If there is Deena-bhava then everything else will follow, and even obstructions will be removed. So the disciple has first to deserve and then desire. Qualifications are necessary. Training is necessary. Even the finding of a Sat-Guru depends upon one's Karma. Many people wonder whether faith in the Guru alone suffices. They are afraid of being ex-ploited or of being misguided. Although there is the





possibility of one's being exploited by an ordinary guru who does not possess the requisite qualifications, still we must remember that we live in a world governed by Law and we get generally what we deserve. If a Sadhaka is perfectly sincere and has intense desire for finding God, there is hardly any possibility of his falling into the hands of an unscrupulous person. Things do not happen by chance but according to an overruling Law known as karma. If a Sadhaka is perfectly sincere and has intense faith in his Guru then he will be able to get from his Guru what he needs even though the Guru may not, in the ordinary sense, be competent to help him. For all help comes from God really and God will send whatever help he needs even though the instrument may not be an ideal one. Besides, the more our mind becomes pure the greater is the power of Viveka and with a discriminating mind it is not possible for us to choose an undesirable person as our Guru. It is only unscrupulous people who generally come across unscrupulous gurus. Another difficulty which aspirants feel is with regard to what may be called

divided loyalty to the Guru and Ishta-Deva. Is the Sadhaka to direct his devotion to God or his Guru or to both? In this matter the disciple is to be guided solely by the advice of his Guru and should do exactly what the Guru asks him to do. The Guru knows the nature of the Chela and the potentialities present in him much better than the Chela himself does and even though the advice given by the Guru may not appear palatable or right it will be found, in the long run, to be the best under the circumstances. Besides, this difficulty of directing the devotion to both, the Ishta-Deva and the Guru is based upon a misconception with regard to their nature, and the relation between them. There is really no difference between the two. The Sat-Guru is really an embodiment of the Ishta-Deva and should be regarded as such. Then there will be no question of divided loyalties. We worship God in stone images. Why cannot we worship Him in a living image which the Guru is? God wants our whole heart : Bhavapriya hi Madhavah. You may worship Him in any way but should do so with your whole heart.



## INDIAN YOGIS' FEATS REAL

LOS ANGELES, Feb. 22 A researcher from the University of California at Los Angeles says scientific tests have proven that India's legendary Yogis can actually perform such feat as: slowing the heartbeat almost to a stop-reducing the strength of the beat to where it could be detected only with electronic instruments and sweating on command-even in a chill climate.

Dr. Marion Wenger of the University of California said, he and Dr. B.K. Bagchi of the University of Michigan Medical School, in a five month study in India in 1957, found Yogis who permitted them to tape electrodes on their skin while they went into trance-like state.

"We found several", Dr. Wenger said yesterday, "Who could slow the heart down to where no beat could be detected, even with Stethoscope for three to four minutes".

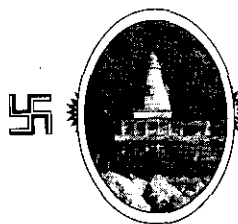
He said : This was accomplished through the Yogis' tremendous muscular control and physical disciplining. "It is a result of physical action," Said Dr. Wenger. "It is not mental at all.

But he said, they met one\* ascetic who achieved the remarkable mental ability to sweat at will-by visualizing himself in a warm climate while he was in a Himalayan cave\*\* in the winter almost naked. (AP.)

\* Swami Purushotamananda Ji; \*\* Yashishta Guha







# NIRMALA VANI

- Sri Swami Purushottamananda

Tulasi Maharaj, the light of my light, the life of my life and without whom I am not only zero but minus something else, to such a Lord of mine all, I had some 15, 16 years back the pertinent audacity to write in clear words like this "all false. I shall not rest satisfied unless and until I come face to face with truth" and what is Truth?

It is that which Exists always, which has neither beginning nor end, which is always on the same state without the decrease or increase and which cannot admit of any thing else with it or in other words which is one without a second.

We can think of one thing only at one time. Numberless objects come to our mind and likewise vanish. These are not truths because they are coming and going. They are all unreal.

There cannot be any image or picture without a solid wall behind, so these thought forms call it real or unreal as you like for the time being cannot appear of themselves without something quite stable at the back. This stability at the back, we know if we use our intelligence has no chance at all, is ever existing, is never affected by time, place or causation and is the witness of all our daily routines. It sees what we are doing when we are wide awake, it sees what we are doing in the

dream and it unfailingly records the state of our sleep also.

Our creation begins with a fresh morning and we preserve it until we fall in sleep only to annihilate all these and then. These are our so called creation, preservation and destruction. These states we know are changing but we have

come to know that there is one thing besides it which is the witness and so not subject to any change. So much our own individuality, this is true as regards the vast universes too, for what is true of the qualities of one drop of water is true of the expansive ocean as well. We are the Pindanda (microcosm) and the universe the Bramandam, the (Macrocosm).

And what do we see here in this great universe appearing, lasting for sometime and then disappearing or in other words birth, death, and preservation.

We are bound to believe in something stable and unchangable which must be at the back of all the Phenomena. It is this thing that we are going to term as truth, and there can not be two truths. In that case truth

is being limited which sounds absurd. How can the unlimitable be limited?

What I wanted to bring before your mind is this, that the truth that runs in and through all these mental as well as physical, phenomena, can be one, and one only, without a break.





This truth Rishis of old-the Great seers have named Sat Atman, Brahman and the like.

If the world is running after material objects and wanted to hug them always to their breast it only goes to prove their ignorance and incompetence to know and judge things rightly and properly. No body will be so foolish as to seek a bride to his son who is on death-bed going to breathe his last in a few minutes.

I saw the whole universe is on its death-bed. Without considering this fact how foolish we are to be so eager and longing to hug everything of it to our dear bosom. But once we begin to keep the fact written in golden letters always before our eyes, I say mental eyes, our thirst and hunger for these worthless things begin to decrease and decrease until we totally discard, and boycott everything material. Spiritual life dawns with the aversion of the secular life and reaches its zenith with the cent-percent aversion or discard.

By aversion I am not meaning that we have to hate anything and everything far from it-know hate begets hate, and this will lead you totally to ruins, love, love-but with Prudence and discretion. Give everything its due place neither more nor less.

What is it that you want my friends? Hell or Heaven? If you want to enjoy heavenly bliss, then be off from Hell fire. When you are in the midst of Hell fire weeping and crying due to its burning pain how can you expect to enjoy the Heaven bliss which all cooling and pleasant? Peace i.e. Shanti is Heaven and Asanthi is Hell. Hankingering for women and gold, name and fame-this is Hell, keeping away from these, not having the least attachment whatsoever this is heaven. Now choose whatever you want. Only through discrimination we can hope to get something good and substantial. So use your intellect nicely, if you begin to exercise your intellect in the least manner possible you are only beginning to see things clearly as they are. Adopting this process steadily and wisely you are only eliminating all what is material and gaining more and more hold upon your own self and nothing in the Universe-can check your victorious

march to the Kingdom and Heaven which is already in you, and all, namely the Atman.

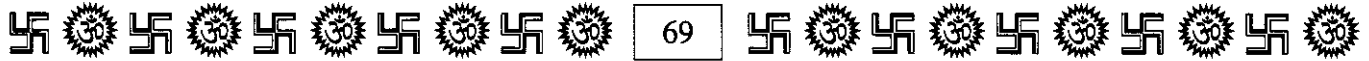
Know your own self and you have known all. You have come to know Ram, Krishna, Christ, Nanak or Mohamad. You may take them as Avataras still they are not bodies, my friend. They are Spirit, the Atma absolute, you too are the just the same thing. Even to know, your own Guruji, you have to know yourself first. Guruji, he is not flesh and blood and bones and unless and until you know your Guruji fully well what right have you to preach the Divinity of the Guruji, your own self.

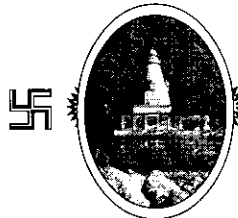
Yes, discard Hell and welcome Heaven if you want to attain the truth. This is the initial state. At last what is to discard and what to welcome. You have become the whole. You have relised your Guru Dev. Now we can sing honestly from our heart "Guru Brahma, Guru Vishnu..... "Guru all in all. He is the only object running in and through the whole Universe and helps its manifestation. Prostration to Thee, my Sri Guru Maharaj who is my own Self."

This is perfect knowledge and it will lead to everlasting peace and Bliss while taking him as separate entity leads to Sects and sectarianism, fights and quarrels, unrest and misery, all Hell fire. Is it not? The essential thing required for the attainment of Truth is sincerity. Be sincere to the very core. This Atman is to be attained through sincerity. By sincere in your manners and dealings. You may gain or lose, the world may praise and blame. Care not. Be sincere. It is the business of the worldly minded to adopt policy and cunningness, not ours. We are not to laugh in sleeves, fear not. March on and on and your Sri Guru Maharaj will take you to the Goal, sure and certain. When the mind becomes quite Pure and entirely purged of all the impurities, the sacred Feet of the Lord shines forth in your mind and you become free and free without much delay.

You have known the Truth. You have become one with itself, for ever and ever.

Hari Om Tat Sat.





# 'Jnanakkummi'

## The Song of Wisdom

*This is a translation of 'Jnanakkummi', a song in Malayalam, composed impromptu by the Swami Purushottamananda ji Maharaj during his visit to Kerala in the year 1952. The translation was placed before Guru Maharaj during the last week of Dec. '60, but the translator (Swami Nirvedananda ji ) had not the good fortune of eliciting his opinion on it as he left Vasishtha Guha soon and returned only after Gurudeva's Mahasamadhi. Later, this was shown to one of his Guru-bhais, Sri P. Seshadri Iyer, a pious man and a well-known linguist of Kerala, who made valuable suggestions and improved the translation. Now this is being presented to the devotees.*

Ye folks! to attain the supreme goal of life  
By dwelling on the blessed beneficent blue-hued Lord-  
And his divine Leelas that free you from sorrows,  
Why do you hesitate?

Wasting not the precious moments,  
Meditate on the full form  
of Radha's Lord, charmer of Lakshmi, born of ocean of milk,  
And say adieu to vanity, delusion and the rest of the ills.

Service unto the great ones, rendered with Sraddha,  
A sovereign remedy to cure all ills.  
Bringing in its train purity of mind,  
Delivers into thee untainted Bhakti and Mukti.

The delusion 'I am the body'  
Which turns everything topsy-turvy;  
Knowing not the truth of the Self, alas!  
Fools are caught in unceasing & death

To throw off the burden of Samsara,  
It's easy if you but possess  
Child-liked nature and non-attachment,  
Know it soon, my dear ones.

Be no more a 'frog in the well',  
Reach the height of the Infinite.  
Peace of mind for ever and aye  
Can be attained with utmost ease.

Become a Krishna Yourself  
By thinking on His form and Leelas.  
Desires vanish with all their train  
And you'll behold the Lord in all.





"Thou, Narayan, Hari, the One Dispeller of sorrows.  
O, Madhusudana, giver of Moksha"

Reverently recite His names ever with devotion  
Eternal bliss will come to you.

Sincere devotion, the only path  
To reach the lotus feet of Lord.

Resting all hopes in Him, the Lord of lords,  
Attain your natural blessed state.

To secure Yoga-kshema<sup>1</sup> to those  
Who worship Him with guileless heart,  
Kansa's foe, the charioteer of Partha,  
Is ever nearest of all.

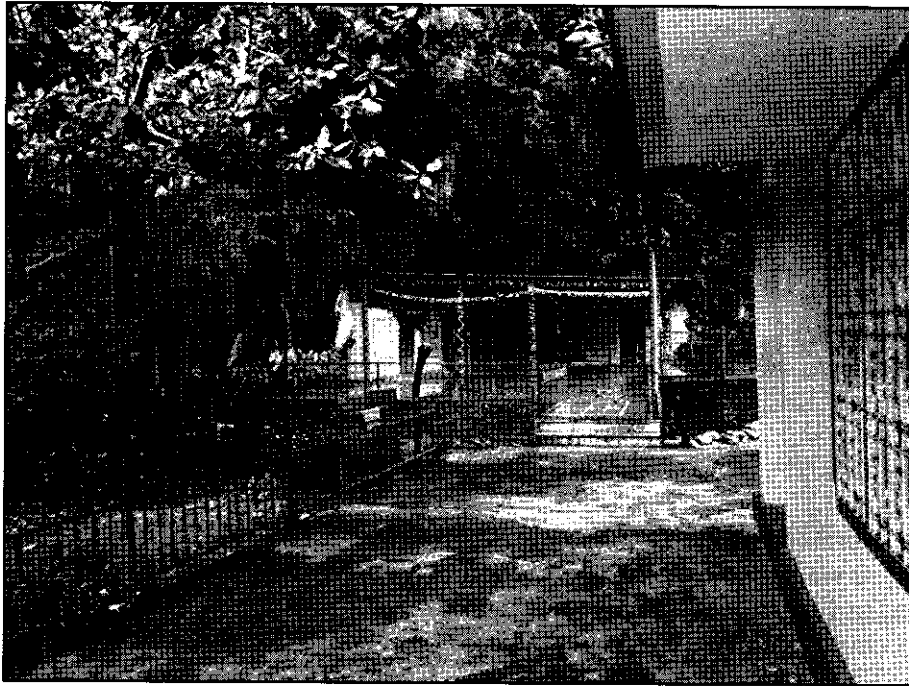
Knowing this human birth to be  
The result of virtues of many lives

Regain the knowledge Immortal  
By seeking the Sadguru's lotus feet.

Yearning to realise Atmaswaroop,  
Intensified day by day  
"Brahman is Real, false all else"  
Will reveal in the heart most brilliantly.

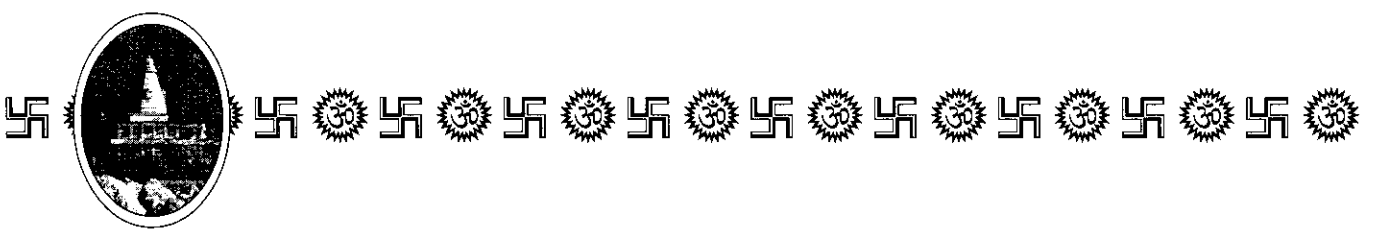
You'll gain a state of unwavering  
Even in the midst of quakes violent;  
Meditate with real understanding  
"Tat-Tvam-Asi"<sup>2</sup> and other great Vedic Texts.

Alas! Alas! many a day,  
I wandered in delusion of mind.  
The grace of the Sadguru shed  
Pure Bliss<sup>3</sup> and Peace on Purusha



Vashishtha Guha Ashram

1. Gain and safety
2. Thou art that.
3. Pure Bliss : The word in that original is 'Nirmal-Ananda'. The last two lines of the original are so ingeniously composed as to serve also as a tribute to Swami Nirmalanandaji, who moulded the composer's spiritual career. - (Tr.)



## Incidents from Biography of Swami Purushottamanand Ji

### Restless to face the Truth

..... He decided not to go to Tiruvalla. Two or three days later he wrote a letter to Swami Ji, the contents of which, in brief, ran like this :

'I am going not to Tiruvalla but to Gokarnam where I intend to do Tapasya for sometime. Whatever I have done so far was only to please Swami ji. With Swami ji's blessings I am going now to Gokarnam. All is false and I cannot rest satisfied until and unless I come face to face with the truth'. (page 79)

### The Voice of The Lord

.... The Ganges was flowing swiftly below the Dharmasala. There were about thirty to forty steps to go down to the river. It was about two in the afternoon. Swami ji decided to jump into the river and get rid of the disease once for all. He got up from his seat, went down and stood on the last step, close to water. He looked around. There was nobody nearby. That was the best time to carry out his resolve. He was about to jump into the Ganges when lo! he heard a voice, 'There is a good Bengali physician here. He has cured many diseases by injection. He is a good person and is not avaricious- he is not after money'. He wondered if these words were meant for him. He turned around. There was nobody to be seen, Was it the voice of the Lord to save His devotee? What other explanation could be given for such a phenomenon. (page 120-121)

### Flash of the Truth

.....Life was happy at Swargashram. One day when Swami ji went for Bhiksha he learnt that a feast was being given on that day and food would



be served late. Instead of returning to his Kuti, Swami ji entered the nearby jungle. Going deep into it, he sat down for meditation. He experienced a very blissful and deep meditation. To quote his own words 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' (All this is pervaded by the Lord). There was a flash of this Truth. Realising that all this is the Lord (सर्वविष्णुमयम्), the sense of duality vanished and even the inanimate objects seemed animated by the spirit of the Lord. As a result of this realization it became impossible to pluck even a leaf. This condition lasted for a few minutes only. It was the beginning of my journey in the spiritual field. I felt I am standing for election to the Lord's parliament". Later on Swami ji narrated this to his friend, Swami Sivanand ji (founder of Divine Life Society.) (page 132)

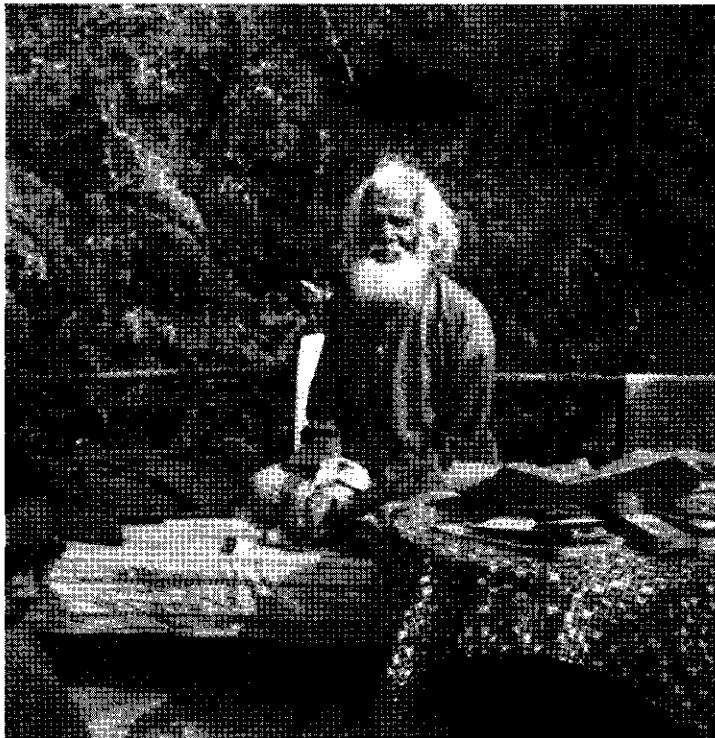
□□



# Guide To Spiritual Aspirants

*Swami Subhadrananda, a Sannyasini disciple, prayed to Sri Swami Purushottamananda ji Maharaj to write a few lines of instructions each day which would be of immense help to her as well as other Sadhakas. At first Gurudev was reluctant but; upon repeated entreaties, he condescended. Thereafter, everyday after his morning meditation, he wrote a few lines in Malayalam in a note book specially kept for the purpose. It became a routine for his disciples to go and read the days advice in his room. Sometimes Gurumaharaj ji explained that days message. These daily thoughts have been translated by Swami Nirvedananda ji in English and published in the form of a book titled "Guide to Spiritual Aspirants." Some of the teachings are reproduced here.*

What is it that you want? Decide about it. People run after money and sex, name and fame. They think that happiness is in these objects. This is a wrong notion. Happiness is in peace. If one experiences happiness while enjoying sense-objects, it is not from the objects themselves. The enjoyment of objects causes the mind to become calm for the moment. Then one feels happy. If you seek happiness through these methods, you will only waste your life and will never get happiness. Pacify the mind; you will enjoy happiness, happiness always. OM.

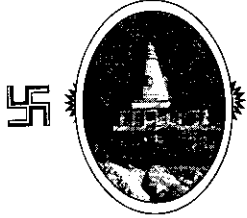


Remember that whatever we have, learning, wealth or anything, is not meant solely for our selfish enjoyment. We have to share them with others also. It is a great sin if we enjoy them exclusively (without sharing with others). Let our family grow and grow and expand (into the whole universe). OM

Happiness lies in peace alone. So try to keep the mind always tranquil. What is most needed for this is Satsanga. Peace! Peace! You will gain supreme happiness. OM.

Even if you are enthusiastic about God-realisation, this desire will not be fulfilled without the help of a spiritual guide. Saints are the guides for this. Worship (serve) them with sincere devotion. By pleasing them you will attain all you want. OM.

Everyone sees death everywhere; yet nobody believes that he too will have to face death. Fear



of death helps us very much to restrain from sinful deeds and to perform virtuous ones. OM.



All are very wise! But nobody seems to have the thought that he has to depart from here (one day). And, for the expenses of that journey, what indeed have you earned? Do think! OM.



Truth is the mother of all virtues. If truth is adhered to, we will obtain all the virtues. Let there be concord among thought, word and deed. Speak as the mind decides and act as per your words. All well-being will attend on you. OM.



If serpents dwell in a house, how can you live there comfortably? You will not get sleep at all at night. Drive away the serpents; then you can sleep comfortably. So long as desire, etc. remain inside (in the mind) you cannot live happily. Get rid of desire, etc. You have attained supreme happiness. OM.



There is an efficacious means to control desire, anger, etc. The moment desire, etc. spring (in the mind), sit somewhere in solitude and remembering God, do the Japa of

**Hare Rama Hare Rama,  
Rama Rama Hare Hare;  
Hare Krishna Hare Krishna,  
Krishna Krishna Hare Hare**

For about five minutes. Surely your mind will be quietened. OM.



Time is very precious. Try to spend your time in good ways only. The time that is gone cannot be retrieved. Do not waste your time in evil talks and evil matters. If the time is spent always in good

matters, surely, our life will become fruitful. OM.



Exercise control over the sense of taste. If this is not controlled, it is indeed impossible to control the other senses. If this sense organ is controlled, It becomes easy to control all the other organs. A man who has no control over the senses is verily a slave. If control of the senses is achieved, we become Jivaamuktas. OM.



In reality, what strength do we have? We cannot even bend a finger. This being the case, why this bragging of 'I', 'I'? It is through the power of the Lord that everything, good or bad, is being done. Knowing this truth, renounce the ego in all places and at all times, and seek refuge in Him. OM.



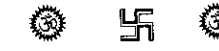
If your mind gets absorbed in great men, great mountains, great rivers, great Tirthas (places of pilgrimage) etc., you too can become great. Let the mind get expanded by any means. OM.



Prayer has great potency. The prayer that wells up from innermost core of the heart, melting the mind, bears fruit before long. There is nothing that is impossible for God. OM.

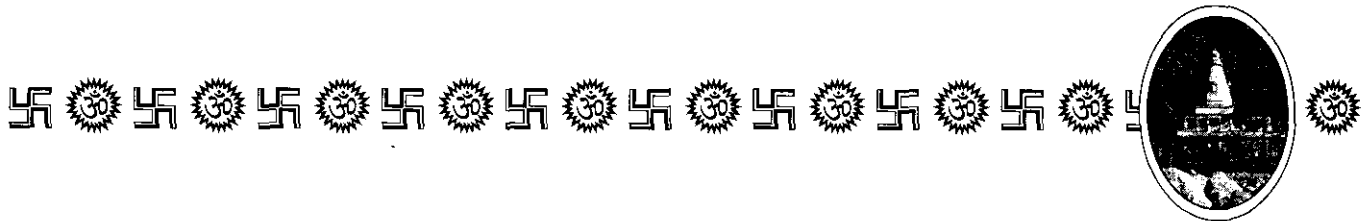


Let your heart melt in others' distress! Those who possess this quality will, no doubt, go forward and forward (make quick progress in the spiritual path). OM.



Do not harm anyone by thought/word or deed. Entertain an attitude of blessing towards all. Practise charity according to your mite, knowing the need of the recipient. OM.





## I Meet My Master

-Swami NishchalaNanda

"It was Friday, 23rd April, 1948. Krishna and I arose about four o'clock that morning. The Ashram slowly began to rise from its slumber with the gong of the temple bell. Fear gripped us; there was no need to speak about it, we could fathom it in each other's eyes. Krishna looked at me and I stared at the forest. It was dark: not a whisper passed our lips. We grabbed our things and stealthily crept out of our room behind the temple, and into the thick bushes. After walking a safe distance we heaved deep sighs of relief."

"Soon the sun began to peep out of the mountains, and its fiery orbit began to strike on us. We felt like two thieves trying to run away from our own shadows. There was a guilt from which we could not get away and at the pacing of each step it began to hurt. I was torn between two forces. Whilst one meant freedom and release, the other meant pain and bondage. Does not every aspirant-nay, every individual-find himself in such a predicament? One thing is certain, we cannot escape from ourselves:

we have to live with one or the other. The choice lies in us- there can be no compulsion."

"Thus musing over my thoughts I had walked several miles. All along the way we had not lost sight of the Ganges, roaring its way between the mountains. It began to grow unbearably hot, and we became thirsty; the Ganges was inaccessible. We had walked about five hours and should have

been near our destination. We felt a bit anxious, for there was no one in sight to direct us. Then we came upon a clearing where there was a shed and we asked a man for some water to drink. Refusing us, he pointed to a grassy path that led to the Ganges."

"Disgruntled, we made our way and climbed down a ridge, and then came upon a wide patha that led all along the ridge to a clearing on the far end till we found ourselves standing before a

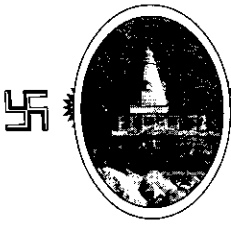
cave. The entrance to the cave was closed. It was a sort of low platform just before the entrance. We were exhausted. Krishna and I threw ourselves on it and fell asleep.

"An hour passed when we heard the creaking of the door of the cave. We jumped to our feet.



Swami NishchalaNanda Ji (South Africa)





The door flung open and in its place stood a figure of average build, just over five feet, with silvery grey beard and long hair. He was past seventy and limped on one foot. His features were strikingly strange and bewitching. We threw ourselves at his feet. Laughing, he led us into a little room on the side of the cave. His laugh was particularly meaningful, the like I had never witnessed before. there was fullness in it, compassion and understanding - an experience in itself. In that instant I knew, like a flash it came before me - I had met my master. He gave us a drink of water and in the meanwhile I explained my purpose. he bade us to the Ashram a few furlongs from the cave and have something to eat, and return to him in the afternoon."

"It was in the Ashram that I heard that Swami Purushottamanandaji- for that was his name - was disciple of Swami Brahmanandaji, who was a direct disciple of Sri Ramakrishna. He was a pioneer worker of the Mission in the South of India for several years, and later, with the permission of his master, had journeyed to the Himalayas to spend his time in austerities. The cave was situated amidst ideal surroundings, with a wonderful view of the mountains and the Ganges before it. The forest around the cave was dense, with vines creeping down the sides of the cave. There were two other caves besides the central one called Vashishtha Guha which the swamiji occupied. The cave has two chambers, the inner one the Swamiji used for meditation. Whoever entered the cave was struck with a peculiar vibration which had a calming effect on the mind."



A path way to Ashram



# At the Feet of My Guru

-Swami Nirvedananda

*Swami Nirvedananda was one of the senior Sannyasin Disciples of Swami Purushottamanandji Maharaj. During the last phase of his malignant disease, Swami Nirvedananda was prompted to publish his already written reminiscences with Guru Maharaj as he was experiencing Guru kripa at every step ever since the disease affected the body. Thus, in the form of book titled "At the Feet of My Guru" he attempted to sing the glory of Guru Maharaja. Excerpts from this book are given below which highlight the indiscernible greatness of our Guru Maharaj.*

## Reminiscences

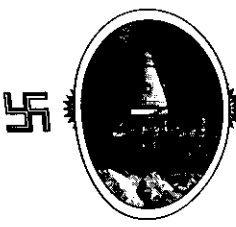
It was in the autumn of 1953 that I met His Holiness Sri Swami Purushottamanandji Maharaj, who was to be my Guru a few years later, for the first time in my life. It was at mid-day during the last week of October that I reached Goolar-Dogi by bus from Rishikesh and, enquiring of a lone villager who chanced to come across, I found my way to Sri Vasishtha Guha. When I went down from the road and reached the ashrama precincts, I was overwhelmed with joy and emotion because I felt I knew the place very well. The valley, the river Ganga flowing not far from the Cave, tall tress and bushes, all made me happy, for they all looked very familiar to me. And When I walked towards the main cave through the bushes and garden, the sight of the Cave thrilled me beyond description. For, as a young boy, when I used to listen to the story of Sagas Vasishtha and Viswamitra from my father, I had imagined Vaisishtha's Ashrama in the same manner as I now witnessed before me. The small elevated platform, gaddi, near the door of the cave, the



Swami Nirvedananda Ji

small thatched roof in front (the present tin-sheet roof was put up much later), were all exactly as I used to imagine. The whole atmosphere seemed very familiar. But that was not the end. One more surprise awaited me. I found a Brahamachari there and he showed me a thatched hut a few yards away where his holiness was sitting. (There were no buildings in the vicinity; only two huts were there. Adjacent to the main cave there was a small room in which Swamiji lived. It is still there.) When I

approached, I found Swamiji seated in an easy-chair outside the hut. A small table was in front of him with some books and papers on it. Holding the letter of introduction from Sri Swami Chinmayanandaji Maharaj in my hand, I approached him. What a surprise! I did not feel that I was standing before a stranger. I felt I was his own - and felt as if he were my grand-father or some close relative. I felt so familiar with him. After salutations, I introduced my self and handed him the letter. He showed me a cone stool and I



seated myself on it. He opened the letter and started laughing and laughing - his inimitable and natural child-like laughter! After making some kind enquiries about Swami Chinmayanandaji who was then conducting an Upanishad Jnana Yajna at New Delhi, started again laughing when he read my name. He was so happy to read it. my name was vedagiri-and asked again an again, "Who gave you this name?" "A very good name", and so on. He enquired whether I had my food and replied in the negative without any reservation. I myself was surprised as to how I behaved so naturally instead of saying. "Please don't bother, I will have it at Rishikesh, "and the like. I felt in the heart of heart that itself was an indication that I was like a child before its guardian.



One day Swamiji received a letter from one of his Sannyasin-disciples. The disciple had written that he was staying in some Ashrama in Punjab. Brahmachari Sadanand gave the news that another Sannyasin-disciple of Swamiji was about to be made the Mahant (Head) of an Ashrama at Rishikesh. Swamiji laughed on hearing this and looking at me, said:

"One should live and work independently. By depending on others one does not realise the difficulties. Sannyasins should not stick to some established Ashramas. They should move out and experience life for themselves. Then alone they will know things as they are."

Though I was then in a workaday life, I took this as guide-line for future and noted the advice in my diary.



The following day, November 15, 1953, I approached Swamiji at about half-past nine and saluted him. He was sitting in the sun. I was to leave on that day. I humbly placed an insignificant amount near him and asked his permission to leave after the mid-day meal. He picked up the money



and put it back in my shirt-pocket, saying with tender love and affection, "O, Why? It is not necessary. I will keep it here. You need it. After a few minutes' silence, he said:

"Be sincere in all actions. Develop intense love towards God."

(Pause)... "God can be seen." Smilingly: "Yes, I see Him just in front." (pointing to the front with raised hand. I looked at the direction, but ...)

(Pause)... "Be in the world but not 'of the world.' Forget the 'I'-ness and 'My'-ness, and have firm faith in Him and leave everything to Him. Do not bother about anything. When time comes, things, Karmas, will leave of their own accord and relieve."

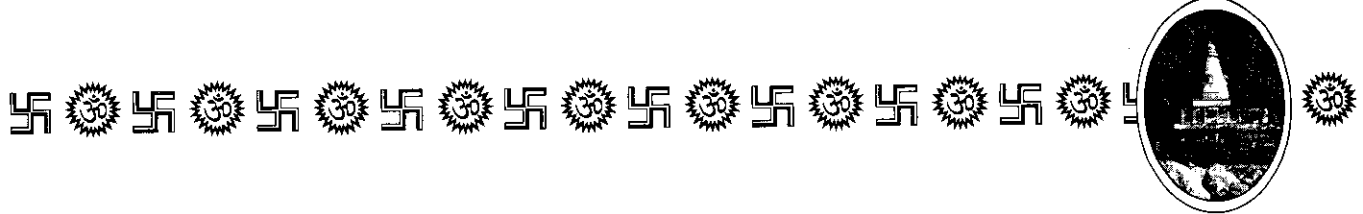
(Pause)... "The desire to know and live in Him should not be half-way. It should be like a ऋद्ध (flood). It should come with such a force, and full, and wipe off old Samskaras.

These words were uttered not eloquently, but slowly and deliberately



Swamiji was a confirmed Vedantin. But there was a happy combination of Bhakti also in him. He always advised: "Think, Think; "Discriminate, meditate." and so on. Another point on which he laid emphasis was "Love". His own love for others was like that of a mother's toward her children. When anybody suffered it was his suffering. Not only human beings, even plants had his sympathy. Once a few mango-grafts were planted in the Ashrama. On the second day when he was coming down his room, he noticed a plant near the staircase and reached towards it. Removing his upper garments he held it above the plant to protect it from the sun, and called us. When we approached., he asked us to provide shade for the new plants by fixing poles and placing leaves above them. His facial expression showed his feeling for the plant - the face had faded in sympathy with the plant!





## 'THE GURU'

-Swami Nirvedananda

*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुदेवो महेश्वरः ।  
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥*

A very familiar sloka is recited by millions of Hindus every day. The meaning is plain : "The meaning is plain : "The Guru is Brahma, the Guru is Vishnu, the Guru is Siva, the God of gods. The Guru verily is the Supreme Brahman, The Guru is Vishnu, The Guru is Siva, the God of gods. The Guru verily is the Supreme Brahman. Salutations to that adorable Guru!" The Guru is identical not only with the Holy Trinity of the Hindu religion responsible for the creation, maintenance and dissolution of the universe but also with the Transcendental Brahman, the One without a second. Such is the position of the Guru. Etymologically, the word is explained as "Dispeller of darkness (Avidya)"- 'Gu' meaning darkness and 'Ru' remover. This is all in the religious context. Even in a lighter sense, in the ordinary usage, the word means 'heavy'. Such being the greatness even of the word, it looks audacious on my part to launch on the subject with my limited knowledge I take a hint from Sri Pushpadanta, namely, that my mind and speech may be purified by dwelling on the greatness of Guru. It is only this hope that has prompted me to write on the subject and this is my only apology for this venture.



The necessity of a Guru for a spiritual aspirant can never be over-estimated. Even in secular matters, whether it be a child beginning to learn the three R's, or an adolescent wishing to learn motor driving, or any other trade for that matter, he has to put himself under a teacher who is himself competent in the subject. How much more it is in the case of a Sadhaka who has to tread the spiritual path which is likened to the 'sharp edge of a razor'? This fact can be discerned

from most of the Upanishads which deal with the subject to Brahma- Vidya. The students approaching a Seer with their doubts about Atman-Brahman Reality, and the Rishi asking them to undergo some more penance according to the degree of purity of mind already achieved by them and, later, imparting the Supreme Knowledge to them, is a very common feature in the Vedantic texts. We also come across direct Sruti and Smriti passages stressing the necessity of a Guru.



- i. Says the **Kathopanishad**: उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान् निबोधत— “Arise, awake (from the slumber of Ignorance) and realize (the Anan), having approached the excellent (teachers)”- (1,3,14).
- ii. The **Mundakopanishad** (1.2.12) also stresses the point thus : तद्विज्ञानार्थं स गुरुमवाभिच्छेत् — “To know That (Atman), he (the aspirant) should approach a Guru.....” Sri Sankaracharya, while commenting on this passage, clarifies that one should not launch on the knowledge of Brahman independently, even though learned in the Scriptures. He says the word ‘eva’ in the text is to lay emphasis on this point. शास्त्रोज्ञोपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्माज्ञानान्वेषणं न कुर्यादित्येतत् गुरुमेव इत्यवधारणफलम्
- iii. The **Bhagavad Gita** (IV- 31) also exhorts : तद्विधिं प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया— “Know that (Supreme knowledge) by thyself (before the Guru), by questions, and by serving him.....”

We are thus convinced on the authority of the Shastras and our own reasoning that a Guru is necessary- nay, indispensable- if we have to attain success in the spiritual path. But a problem arises : How to recognise and choose a real Guru? What are his qualifications? Let us look to Sri Sankaracharya for an answer: He describes an ideal Guru as one who is versed in the Vedas, sinless, unsmitten by desire and a knower of Brahman par excellence, who has withdrawn himself into Brahman; who is calm, like fire that has consumed its fuel, who is a boundless reservoir of mercy that knows no reason, and a friend of all good people who prostrate themselves before him’.- (Vivekachudamani, verse 33). Then, again, there is no yard- stick with which to measure the spirituality of the Guru and make sure of his genuineness before surrendering to him. Only, we must have implicit faith. “Even the finding of a Sadguru depends upon one’s Karma”, says the Sage of Vasishtha Guha, Sri Swami Purushottamanandaji.

He proceeds : “Many people wonder whether faith in the Guru alone suffices. They are afraid of being exploited or of being misguided. Although there is the possibility of one’s being exploited or of being misguided. Although there is the possibility of one’s being exploited by an ordinary guru who does not possess the requisite qualifications, still we remember that we live in a world governed by Law and we get generally what we deserve. If a Sadhaka is perfectly sincere and has intense desire for finding God, there hardly any possibility of his falling into the hands of an unscrupulous person. Things do not happen by chance but according to an over-ruling Law known as Karma.....Besides, the more our mind becomes pure, the greater is the power of Viveka, and with a discriminating mind it is not possible for us to choose an undesirable person as our Guru. It is only unscrupulous people who generally come across unscrupulous gurus.”

The disciple surrenders himself to the Guru without any reserve and pins his faith on him for his salvation. Such a disciple who has **Ananya-bhakti** does not waver or entertain doubts about the preceptor’s teachings ; nor does he run about from guru to guru to achieve his aim. One who digs a well has to concentrate on one selected spot and dig persistently until water is struck. If he changes the spot frequently and digs at different places, he will never find water ; all his efforts will result only in waste of energy, time and money. In the same manner, one has to stick to one Guru and practice Sadhanas as prescribed by him. “The Knowledge that the Guru possesses can be had only by Guru-bhakti,” says Lord Siva to Parvati. The importance of Guru-bhakti is stressed by Sruti also. The **Svetasvataropanishad** says that the spiritual truths shine forth only in him who has supreme devotion to God and an equal degree of devotion to Guru —यस्यदेवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ—(VI, 23). The teacher who, having himself



crossed this dreadful ocean of Samsara, helps others also to cross the same without any motive whatsoever is, indeed, a great soul. The greatness of such a Guru has no comparison any where while deserting the greatness of the Guru,, the Lord tells Parvati : "If Siva gets angry can find a saviour in your Guru ; but if the Guru is enraged, there is none to save you." We come across an anecdote in the **Ramacharitamansa** of Goswami Tulsidas, illustrating this statement of Lord Siva.

**It runs thus :**

"A disciple was sitting in a Siva temple, doing Japa as initiated by his Guru. He, because of his lower birth and culture had grown more and more egoistic than Sattvik. The Guru never uttered a word of reproach even when his teachings were ignored or he himself was insulted. Now, when the disciple was in the temple, his Guru also happened to come there. The disciple's egoistic feelings were upper most and he did not even care to get up from his seat and prostrate himself before his Guru. The latter, as was his nature, did not mind the lapse on the part of his disciple but the Lord could not tolerate the discourtesy shown to the Guru. A voice was heard, cursing the impertinent disciple, 'O sinner, you have been sitting motionless like a python when your Guru has come. For this sort of insolence, may you become a snake and live in the hole of a big tree.' The disciple realised his mistake and began trembling with fear. The Lord had cursed him but the Guru had a soft corner for his disciple. So he praised the Lord and prayed to Him to save his disciple from the wrath-and the Lord had to modify the curse, making it lighter."

This praise, called 'Rudrashtakam,' is very popular among the people of North India.

In modern times too, saints have glorified the greatness of the Guru. Sri Swami

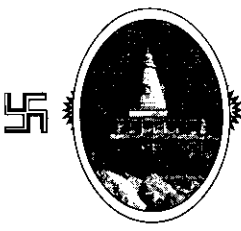
Maheswarananda Saraswati, the late Sankaracharya of the Oordhvamnaya Peetham, Varanasi , who was an authority in various Sastras, used to say like this : "If one has removed the previous day's flowers, garlands, apparel, etc. from the deity and is about to begin the worship, and if his Guru happens to come there then, he should leave everything at that stage. Then, after salutations, he should offer a seat to his Guru and perform the remaining part of the Puja including Dhooपा, Deepa, Naivedya, etc. to him. After that he can continue the worship of the deity. The Lord will only be pleased by this." Coming as it does from such authority, it has the stamp of the Sastras affirming the superiority of Guru over God.

There is a couplet in Hindi sung by a Bhaktakavi, with which people in the North are very familiar. Rendered freely, it would read :

**"Guru and God have both appeared,  
To whom to bow down (first) ?  
Guru is greater (between the two),  
For, he has shown me God."**

Sri Swami Purushottamanandaji has also dealt on what may be called divided loyalty to the Guru and Ishta-devata. After giving a few hints he says : "Besides, this difficulty of directing the devotion to both, the Ishta-devata and the Guru, is based upon a misconception with regard to their nature and the relation between them. There is really no difference between the two. The Sadguru is really an embodiment of the Ishta-devata and should be regarded as such. Then there will be no question of divided loyalties. We worship God in stone images. Why cannot we worship him in a living image which the Guru is?"

All these anecdotes, authoritative texts and statement of Mahapurushas of our day tell us the greatness of the Guru when the disciple is a



Sadhaka, one practising spiritual disciplines in order to attain the *summum bonum* of life, namely, Moksha. When one attains to that state, we learn, all differences disappear : no duality whatsoever remain-not even the difference of Guru and Shishya. After reaching that exalted state does the disciple completely forget the Guru who helped him to attain that Supreme Felicity and push him to the background? No, Guru is great even after reaching that state. Sri Sankaracharya tells us graphically in a few verses how the disciple, bubbling with Joy after experiencing the highest Samadhi, gives expression to his gratitude to the preceptor who made it possible for him to attain that state of Beatitude. One of the verses reads, "Blessed am I ; I have attained the consummation of life, and am free from the clutches of transmigration ; I am the Essence of Eternal Bliss, I am infinite-*all through thy mercy !*"

Another savant, Sri Tandavaraya Swami, portrays the disciple's attitude and the Guru's exhortation in two beautiful songs (verses) in his **Kaivalya-Navaneetam**, a master-piece on Advaita Vendanta in the Tamil language. We give a rough translation in Brief : The disciple sings : "Salutations to thee, O Father ! Thou, residing in me as Antaryamin, hast been guiding me through my innumerable births and hast come out as Guru in this birth of mine to grant me Mukti by imparting the Knowledge Supreme. For this act of kindness, O Lord ! O Gurudeva ! I know not how to repay thee. Salutations at the Holy Feet again and again !" (l.86). And, what does the teacher demand as Guru-dakshina ? The magnanimous preceptor, as befits his status, answers in very endearing terms : "My child, if you remain established in Brahman (Swarupajnana), not giving the least chance for doubts, ignorance, etc., to rise again, that will be the best reward." (l.87).

This expression of indebtedness by the

disciple is found in Srutis too, but in a seed-form, like an aphorism. The Prakarana treatises of a later period, like the ones quoted above, have elaborated and presented it in a picturesque manner. One Sruti text reads :

ते तमर्चयन्तः त्वं हि नः पिता  
योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि

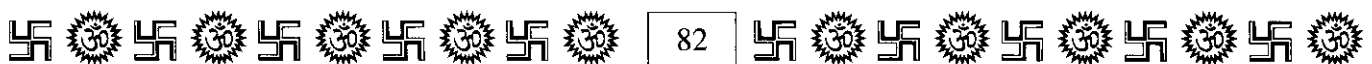
"Having worshipped him, they (the disciples) said, "Thou art our father that hast taken us across the other shore of Avidya."

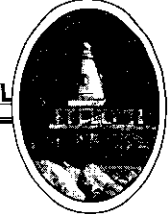
From all that has been said above, it will be seen that the status of a Guru has no comparison whatsoever ; he is always great and there is nothing greater than him—गुरो परतरं नास्ति, That is the reason why it is difficult to find a real Guru. Sri Sankara too lists, among other things, the 'protecting care of perfected sage' as a rare thing, and available only due to the grace of God. But one need not lose heart. As we have seen in the foregoing paragraphs, if one is perfectly sincere to find God, to attain brahmajnana, he is sure to find Sadguru. If a question is again raised as to how one decides upon a particular person as his Guru, we can only say that the intuition plays the part of a guide in thee matter. Or, as someone has said in a different context, 'the heart knows the reason that reason does not know' aptly fits in here also.

Before concluding the article, let me offer grateful Pranamas to my revered Guru whose grace alone helped me to write on such a lofty topic as this. Whatever good point is found in this, is all due to him ; irrelevant points and inadvertence being entirely mine.

May the grace of the Supreme Guru be ever upon all !

Om Shantih !                      Shantih !                      Shantih !



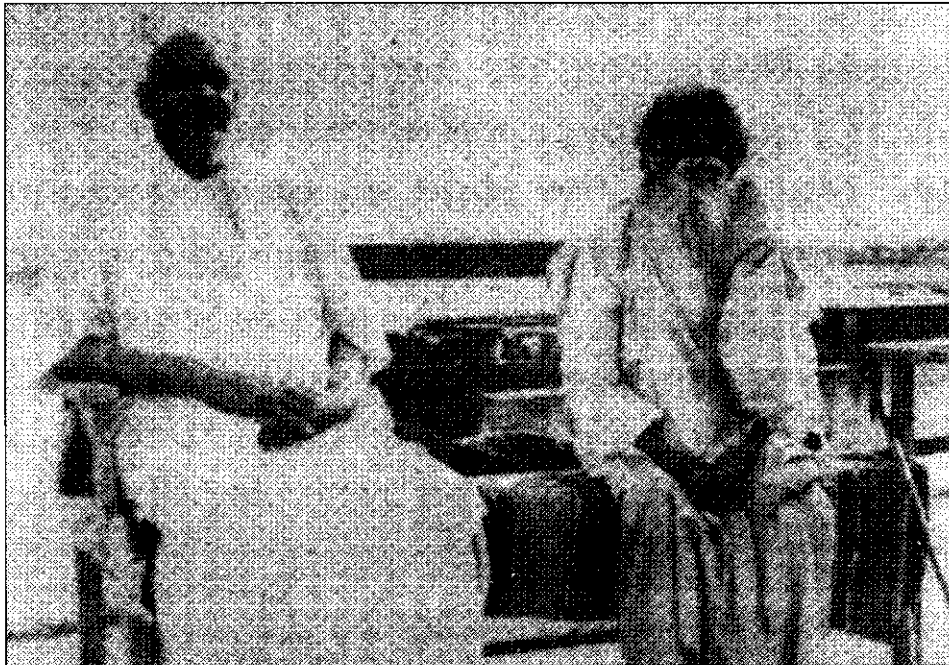


# The Light of Vashishtha Guha

-Swami Krishnananda  
Divine Life Society

Saints and sages are the light of the world. The presence of personalities who reveal in their lives the Power of God is a blessing by itself. Worshipful Sri Swami Purushottamanandaji Maharaj sanctifies

the already sacred holy shrine which has the reputation of having been the Ashram of Rishi Vasishtha in ancient times. I



I have heard personally from H.H Shri Swami Sivanandaji Maharaj, who was a contemporary of the Swamiji of Vasishtha Guha, that this exalted saint was a paragon of traditional austerity and spiritual radiance.

It is common knowledge among the people of the locality that Swamiji exercised great spiritual powers. Swamiji used request but drivers to escort poor school children who were usually stranded on the road. I have heard it said that one of the drivers did not pay attention to the request fo the Swamiji and drove off. But the bus got stuck up and would not go ahead due to a

mysterious dislocation of the mechanism or some ununderstandable mystery. People nearby rebuked the driver for his neglect of the request from the holy man. The children then were allowed to get

in and the bus moved on unhampered.

The miracle man of Vasishtha Guha remains even today as a sacred memory in the ardent minds of devotees. Apart from the spiritual guidance and divine help which the Swamiji extended to seek-

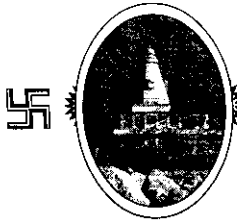
ers of Truth, the Social services rendered by him to the poor and the needy by way of education, monetary aid and personal assistance in many ways are well-known. God is in heaven and also in the world. So are men of God.

It is my fervent hope that the Vasishtha Guha Ashram will continue to be a temple of pilgrimage for everyone who seeks succour, whether spiritual or temporal. May the Grace of the Almighty be upon all.

□□







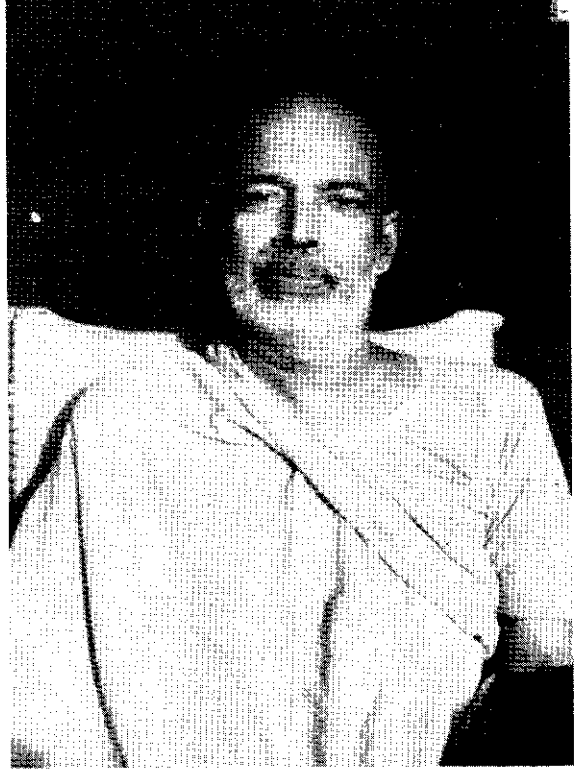
## My Sacred Reminiscences

- Swami Sankarananda

People are always happy to tell how they were drawn to the lotus feet of their Sadguru and their reminiscences about him. It is a source of rare spiritual joy and inspiration. The mind is withdrawn with ease from this mundane world and it soars to the spiritual realms. It gives a boost to their sadhana. As such I feel some ineffable joy in recalling my reminiscences of Sri Guru Maharaj. Not only this, I also find the unseen Grace of God that brings a sadhaka to the lotus feet of his Sadguru.

Even in my teens I had the good fortune of reading the life and teachings of our great spiritual masters-Sages and Saints and some religious literature- Upanishads etc. from my father's library. In 1957 I got a copy of the autobiography of our Guru Maharajji, the sage of Vasishtha Guha, आत्मकथा अथवा ईश्वरकारुण्यम् in Malayalam, from a friend- a member of the Divine Life Society and who occasionally used to visit Rishikesh the Head-quarters of Sivananda Ashram. Instinctively, I was attracted to him and inspired by his life of Tapasya, renunciation, Nishta, etc.

In 1958, I visited Kanyakumari on a pilgrimage along with some of my friends. Sri Parameswaran Pillai, (G.O.C, of Kerala Force) was living there in those days after his retirement, devoting his time to spiritual sadhana. In the course of conversation, he mentioned about his trips to the holy places of the Himalayas, his visit to Vasishtha Guha, meeting Maharaj and the publication of the autobiography of Maharaj, etc. He also told us that Sri Maharaj was expected to visit Kerala and Cape (Kanyakumari) shortly. One day I



Swami Sankarananda Ji

saw, in a daily, the happy news of Maharajji's programme at Trivandrum.

One afternoon I reached the house of Dhanwanthari Parameswaran Pillai, Trivandrum, where Maharajji was accommodated. That day he was invited for Bhiksha by a devotee, Sri Chandrasekharan Pillai, I.G. of Police, to his house. On his return, Maharajji saw a few of us waiting for his darshan. Eventhough it was time for his rest, he did not care for that and was happy to be with us. I offered flowers at his feet. There was no formality or fixed time for his darshan. Anybody, known or unknown, young or old, high or low could freely approach him at any time. His





room was always open and, so too was his heart to devotees. He was happy and smiling. His mere presence was a source of inspiration and supreme peace. His personality was much more than what one might imagine by reading the autobiography. He rarely used to make any formal enquiries viz. about name, occupation, place, etc. So directly he began to ask, as it was usual with him, "What do you want?" It was an eye-opener. It used to awaken the spirit of self-analysis and enquiry. This enquiry, 'What do you want?' is also a Mantra to be remembered often in life when the mind gets distracted by all sorts of mundane desires. This helps to develop Viveka and Vairagya and to maintain the balance of mind. Human life becomes blessed if only we know what is it that is really wanted or desired. 'Desire something by which all desires vanish'. Such was "Maharajji's method of teaching.

Maharajji asked me to meet him again at R.K. Ashram, Nettayam, a few miles away from Trivandrum, after a day or two. Accordingly, I reached there one morning with some of my friends. Shri Maharajji was seen sitting on the western verandah, commanding a distant and beautiful scenery. A senior Swamy of the R.K. Mission was eager to know about the life at Vasishta Guha-how many members, how it is run and the means of income, etc. Maharajji said, "Eight to ten permanent inmates apart from the floating number of pilgrims, ten to fifteen daily."

**Question :** "Is there any permanent fund to run the Ashrama?"

Ans. No."

**Question :** "How do you manage?"

Slowly came the answer in the most natural way with a smile. He began to recite the famous sloka of the Geeta "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ " (अ. ६ श्लो. २२) and said, "This is my repeated experience". Before he could finish the Sloka his voice got choked out of emotion. Horripulation was seen all over his body. Perfect silence supervened for a few minutes. We remembered the words of Narada regarding a real Bhakta :

तीर्थोर्कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्मणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि

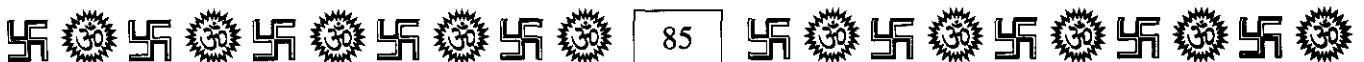
—ना.सू. ६६

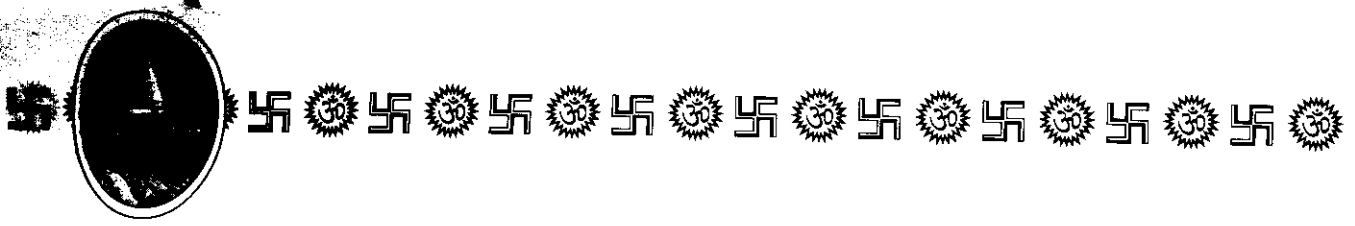
We saw in Maharajji's life some of the important teachings of our Shastras, pertaining to spiritual life, verified, viz., unreserved surrender, sincerity, simplicity, nishta, renunciation, brahmacharya, Solitude and so on. The silence was broken by the Swami's intrusion :

**Question :** Is not the teaching of the Geeta better realised while engaged in the service of the world than in solitude?

Ans. "First one should realise God by intense sadhana. Solitude is best for this purpose. This is my view. Don't be anxious about service of the world. 'Lokasangrah' will take place without any effort according to one's past karma and samskaras." Maharajji continued, "you are living in an ashrama and engaged in social activities. How many times do you remember God, for how much time it lasts, with how much feeling or intensity do you remember Him? Does it come from the heart? Find out. But when you go to a solitary place for sadhana, where you don't have any sense of security and find your bare necessities of life fulfilled by the unseen power of the Lord, then see the feeling of your heart, how deeply you think of God, of His mercy, etc. You will develop complete dependence of God, He will take care of you."

□□





## MY BELOVED GURU DEV OF THE CAVE

— Swami Shantanand



Swami Santananda Ji

In 1952, during one of my visits to Sivanandashram at Rishikesh, I came across Digvijaya Souvenir where Swami Sivanandaji Maharaj had mentioned in an article that even in those days there were Mahapurushas (great men) who had seen God face to face (i.e. self-realised)- for e.g. Krishna Prem (Ronald Nixon) Maharaj of Uttar Brindavan and Swami Purushottamanandaji Maharaj of Vashishtha Guha. I became very happy because if only I could find one of them I should

be enabled to get all first hand knowledge of God Straight from the horse's mouth instead of meandering to find out a competent Guru. Yes, Sivanandaji Maharaj himself was no less realised but my eyes were blinded. Each Mahapurusha comes to this world with separate lists of people who are to be uplifted and my name was not, perhaps, on the list of persons entrusted to the care of Swami Sivanandaji. There was another vital factor too.

In 1951, after reading 'The Gospel of Sri Ramakrishna', I used to weep daily about my misfortune of having not been born in the days of Sri Ramakrishna Paramahansa (to be referred to as Thakur) and become one of his disciples. I never knew or could never even guess what a tremendous austerity one should have done in previous births in order to earn the enviable position of becoming even a speck of dust at the feet of such a great Master as Thakur who was a special incarnation (Avatara Varishtha), meant to inspire the modern world. Every day, I used to spend hours looking at the photo of Thakur and opening out to him mentally all the anguish of my heart in not being able to have proper spiritual guide. Side by side with it, all wordly and base desires for wealth, comfort etc were also equally flourishing at another corner of my mind. My mind was a battlefield- a real Kurukshetra.

In mid 1951, I made a resolve that I will have no Guru unless he be from the lineage of Thakur. My Guru should be utterly desireless and established in Brahman (the Supreme reality)

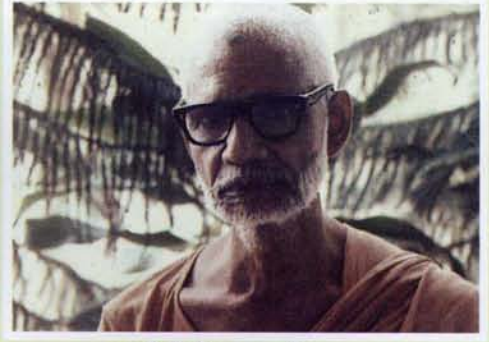
*श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः ।  
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः ॥*

(VIVEKA CHUDAMANI- Slokas 34.35)





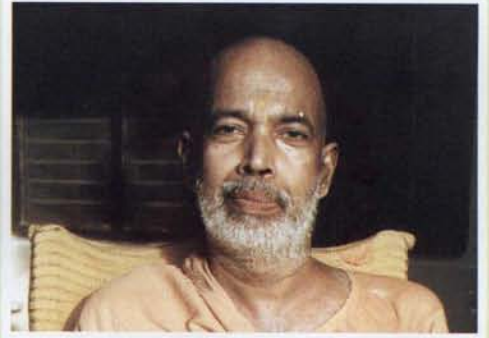
आश्रम के प्राचीन वट वृक्ष की पृष्ठभूमि में  
सर्वश्री स्वामी चैतन्यानन्द जी, स्वामी शान्तानन्द जी



स्वामी निर्वेदानन्द जी



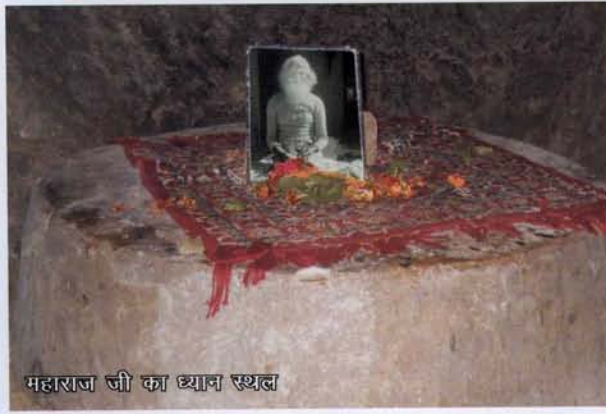
स्वामी भूमानन्द जी



स्वामी शंकरानन्द जी



बायें से दायें - स्वामी चैतन्यानन्द जी, स्वामी कालिकानन्द जी, स्वामी पूरहरानन्द जी, स्वामी रघुवीरानन्द जी एवं स्वामी साम्भवानन्द जी



महाराज जी का ध्यान स्थल



गुफा के अंदर प्राचीन शिवलिंग



महाराज जी का जन्म स्थान एवं मंदिर, तिरुवल्ला, केरल



वशिष्ठ गुहा आश्रम का गंगो तट से विहगम दृश्य



आश्रम गेटद्वारा पर खाद्य सामग्री आदि प्राप्त करने हेतु उपस्थित स्थानीय जनसमुदाय



He should possess no wealth or Ashram buildings nor should he have a bevy of Sanyasi disciples organised into an administrative institution, one being Accounts officer Swamiji, one P.R.O. Swamiji, one Quartermaster Swamiji and so on. He should be one who would go into Samadhi once a white, as Thakur used to do, while hearing songs about the Divine Mother. I never thought for a moment as to what qualifications I myself possessed to deserve such an eminent master. When I think of it in retrospect, I hang my head in shame for my rank foolishness. Still it is a miracle how the Divine Mother fulfilled my desire in this respect to the last word. I only prostrate to the Divine Mother in inexpressible heartfelt gratitude and intense love.

In 1952, even though I came to know of the two living Self-realised saints from the souvenir of Swami Sivanandaji Maharaj, nobody could give me any information about their location. I continued with what I considered as Sadhana-keeping complete silence on all Sundays, daily meditating on Thakur and the Divine Mother, chanting the names of Gods (Narayana, Govinda and so on) loudly in the evenings, occasionally chanting the sacred texts of VISHNU SAHASRANAM, LALITA SAHASRANAM and SOUNDARYA LAHARI (of Adi Shankaracharya)

### LOVE AT FIRST SIGHT

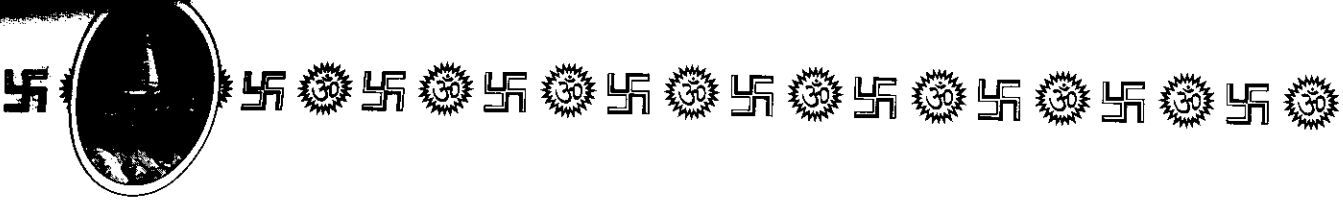
At last, it was in September/October 1957 that when I was going by bus from Meerut to Rishikesh to spend Puja holidays (Navaratri) in Sivanandashram (the only reliable place for Satsang known to me), I fell in conversation with a young gentleman. Mr. P. an Executive of Escorts Ltd., seated next to me. All of a sudden Mr. P shocked me by asking whether I would care to accompany him to Vashishtha guha and spend a couple of days or so in the holy presence of SWAMI

PURUSHOTTAMANANDAJI MAHARAJ. What an electrifying bliss it was to hear the name of my future Guru a name kept treasured for so many years since 1952 in the recess of my mind. I reached Vashishtha Guha and at last, saw my Guru Maharaj looking at me with a radiant laugh. What surging happiness did I experience at that moment! It was love at first sight. I became his bonded slave from that moment. His compassionate glance was a subtle DIKSHA (initiation). He greeted me asking "How many years is it since you have known me and how long has it taken you to come here?" I could not believe my ears. I stood dumbfounded after prostrating on the ground. How had he known that I had read about him as early as in 1952? Was he hinting that had my longing for him been deep and intense enough. I could have been brought to his holy feet much earlier? For two or three more days I stayed in the Guha enjoying Maharaj's conversation with various devotees from morning to evening, sometimes playful, interspersed often with childlike laugh and sometimes serious-mostly in English.

Maharaj used to talk very little and that too in pithy sentences with deep undertones. Once a devotee asked him "What is the difference between Gyan Yoga (path of knowledge) and Bhakti Yoga (path of devotion). My Gurudev replied-"The one who knows him will come to love him. The one who loves him will come to know all about him."

### INITIATION IN SRIMAD BHAGAVATAM

In my first visit, when I went to take leave of Maharaj, he suddenly told me " Aye, you are coming during the ensuing birthday celebrations in November/December (1957) and will do 'Bhagavatha Saptaham'. It surprised me as he had never once asked me my qualifications or whether I knew Sanskrit at all. I was also scared. Even though I had studied Sanskrit in a Sanskrit college



years back, I had never once gone through the book "SRIMAD BHAGAVATAM" - an epic Purana which contains the essence of the highest spiritual knowledge. This book was the favourite of Maharaj since the days of his youth and while yet a boy he used to go to various houses on demand and read portions of Sri Madbhagvatam to them. Bhagvatam used to be the touchstone to test the knowledge of great Sanskrit scholars (भागवते विद्यवतां परीक्षा).

A few days before Maharaj's birthday in 1957, I got a letter from Vashishtha Guha intimating the exact dates and reminding me that Maharaj was expecting me to conduct the Bhagavata Saptaham for seven days excluding the preliminary day of introduction on Mahatmyam (glory of Bhagavatam). Now there was no other go. I procured a copy of Bhagavatam from Delhi, proceeded to Guha and on the appointed day started reading it loudly before the audience, with Maharaj sitting on a parallel dais. I never knew how much portion was to be read on each day and where to end. Maharaj told me by about 11 a.m. to stop and I stopped reading. He then told me that as the audience did not know Sanskrit, I should explain the contents of the portion read to the audience in Hindi from about 2:30 p.m. for four hours. I was shocked as I myself did not know what the contents were. I had been reading mechanically without understanding. I went to the banks of the Ganges and went through the Hindi translation available in my copy of Bhagavatam till 2 p.m. and then started my exposition in Hindi after praying to Guru Maharaj. Thus started the Sadhana prescribed for me by my Gurudev and is being continued on every birthday of his till now (1999) except for a gap of about 15 years or so after the Mahsamadhi of my Gurudev. It is this study of Srimad Bhagavatam which contributed substantially to my spiritual progress.

## MANTRA DIKSHA (INITIATION)

Even after finding that the Maharaj had fulfilled all the conditions set by me for becoming my Guru. I never felt like approaching him for Diksha (Mantra initiation). It was in 1959, on my Master's birthday that when I was taking my meals at 4 p.m. after serving several batches of Mahatmas, who had come for the Bhandara (big feast given in Ashrams). one of my Gurubhais, Swami Nirvedanandaji Maharaj, came rushing to me and informed me that I was wanted by GURUDEV pronto. When I went upstairs, my Gurudev, of his own accord, gave me Mantra Diksha Scriptures prohibit giving Diksha or any spiritual instructions to anybody without being specifically asked- "नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्" Here my Gurudev calls me and bestows a Mantra unasked on his own birthday in the evening when I had not taken even a bath and was dressed in soot-stained cloths drenched in perspiration. Is this not compassion galore?

## UNFIT TO RENOUNCE

In Nov./Dec. 1959, a few days after the Mantra Diksha, myself and Gurudev were coming down from his room, in the evening, all alone. My Master's hand was on my shoulder and we were going down the steps. On the very first step, apropos nothing, suddenly he told me "Aye, you are not fit for Sanyasa now. You have still some strong sanskaras of a householder left in you. You better marry soon. " These words shocked me to the core. I was 30 years old and was fully convinced in my heart that I was an eminent candidate fit for Sanyas because of my knowledge of Sanskrit and some study of scriptures. My Gurudev's words were a severe blow to my ego. I became like a balloon from which all air had been pressed out. Standing on the last step he again blessed me - "Do not worry. Do as I said one day you will get what you want also. By his grace I become a monk after living 32 years of married life and completing twenty years as a sannyasin too. The Guru grace never fails.

□□





## My Guru Dev

- Swami Shantananda

What is there left for me to write about my Guru Dev, when the scriptures have dealt with the glory of a Guru elaborately? It is told in Shiva mahimna Stotra—"Let us take the best of the materials required for writing. We require inkpowder, a small container with water to dissolve the powder (Till early last century ink was been prepared in this manner and one used to dip a pen with a nib to write). We also require a pen, paper on which to write and a good tireless writer who can write for 24 hours daily for any length of time. To satisfy this requirement, let us pulverise into a powder, the entire black mountain called Anjana Giri at the end of the earth and dissolve it all in the ocean water. Let us choose a small branch of the divine wish-fulfilling tree called 'Kalpagam' and use the entire surface of the earth as paper to write on. Let us engage Saraswati the Goddess of learning to write for 24 hours a day, ceaselessly. Even then, be assured, you will never be able to exhaust the "glorious traits".

असित गिरिसमं स्थात् कज्जलं सिन्धुपात्रे  
सुरतरु वरशाखा लेखनी पत्रमुर्वि ।  
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं  
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

My Guru Dev was a strict disciplinarian but at the same time very compassionate too.

He used to prohibit some of his disciples from doing breath control exercises(Pranayama). Swami Viranand was one of such disciples. About 1½ kms. further up from the Vasishta Guha was a palace of the king of Garhwal. One evening Swami Viranand had gone for a walk and was sitting on one of the stone-seats in the garden inside the palace. Even when the king came into the garden along with his Dewan, Swamiji did not get up and show any respect for the king. The following conversation took place between the king and the Swamiji.

"Who are you?"

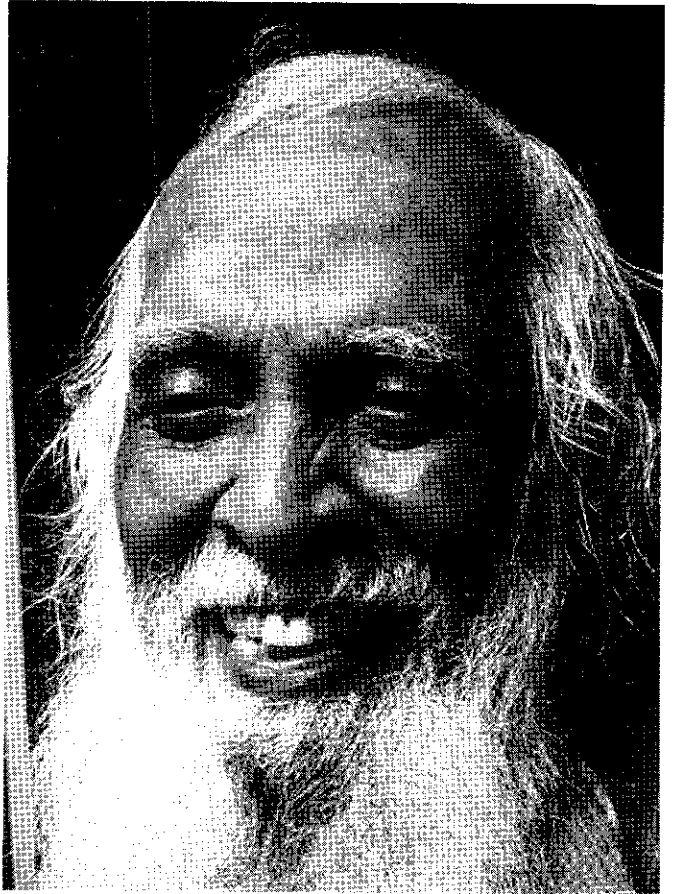
"I am Swami Virananda, a disciple of Swami Purushottamananda, of Vasishta Guha"

"Oh! have you learnt any thing from your Guru or are you idling your time?"

"Would you like me to show you something of what I have learnt"

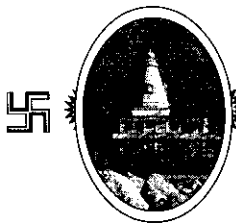
"Why not?"

Now Virananda, who had acquired some mystic powers (siddhis) extended his hand and lo, it contained a new garland of artificial flowers



Swami Shantananda Ji





which the king had put on the picture of Hanuman-ji on the first floor of the palace. Virananda further asked the king- "Is this enough or shall I bring forth all the contents of your safe kept inside the house". The king was awed by the performance and with humility requested him not to demonstrate any more of his powers. In the meantime, the Dewan ran quickly to the Vasishta Guha and apprised Guru Dev of what all happened resulting in the humiliation of the king. Guru Dev came up and was waiting at the entrance to the Ashram on the main road. When Virananda returned jubilantly, Guru Dev accompanied him to the cave down below beating him all the way and exclaiming "How many times have I told you not to do Pranayam and earn these mystic powers? Who asked you to demonstrate your powers? This is a case of his disciplining the disciples. This same Virananda became mad in 1958 and after stealing some articles of Guru Dev at the time of the latter's camping at lucknow, disposed them of in exchange for some trefles. This is also the result of disregarding the specific advice of a Guru.

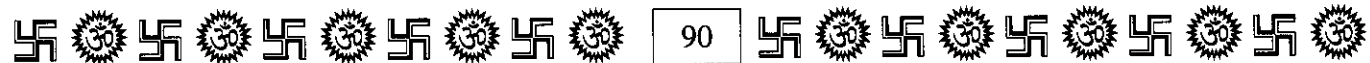
Another time When Guru Dev went to Madras, he was taken to the house of one Professor in English called "U.S. Ramachandran" of Vivekananda college for the first time. During the course of the conversation in Sir, U.S. Ramachandran. mentioned about a stomach ache he had been continuously suffering for the last three years and had not been responding to any treatment. My Gurudev asked him to remove his Banian and put one of his fingers U.S.R.'s navel. Mr. U.S.R. felt as if an electric shock was passing though his entire body and was immediately got rid of his stomach ache for ever, I heard incident from Mr. U.S.R. himself at Anandashram Kanhangad more than once.

Another instance of Gurudev's compassion. There was one Madan Babu at Lucknow. He was a disciple of Guru Dev who once advised him not to marry. That same year Mr. Madan Mathur got married and in due course got two children (boys) too. Soon enough his wife died suddenly leaving one boy aged four and leaving the other aged 2½

years old or so. After some time Madan Ji went to Vasishta Guha, leaving his children in the care of his sister at Lucknow. He told Guru Dev about his breavement and asked his advice as to what he should do. Guru Dev well remembered his earlier advice which had been disregarded and replied rather sarcastically- "Why, you marry again and if she also dies, marry again and so on." When Madan Babu expressad his desire to return to Lucknow. Gurudev asked him- "Aye, why don't you remain here for a couple of days more and then leave?" Madan Ji hastened to reply "I can not. I have to look after my children". Gurudev ended the conversation with a exclamation 'Oh!'

One day, at Lucknow, Madan Babu was cooking Purees for his children. A big fireplace was burning with hot charcoals and he was frying Purees in hot oil in a sauce pan. His eldest son was dancing and singing on a small but tall stool by the side of the fire-place. Suddenly the stool over turned and the boy fell on the sauce pan with boiling oil. He fell on the ground and over him fell that boiling oil, sauce pan, the burning coal and finally that sigree too. The father brought a gunny bag and with its aid rescued the child from the burning oil and the charcoal. On enquiry, the boy confirmed that he was safe and sound and no harm befell him. It was a miracle.

Madanji was living in the first floor of his own house. He used to go to his office daily in a bicycle after locking up his both children in a room with all provisions for food, water etc. and with an attached bathroom. One day, when he was taking his bicycle down, before leaving for his office, the younger child came running to him, fell down in the first step of the staircase and rolled down all the forty steps or so till he reached the ground. He began to wail loudly. When Madan Babu left the cycle back in the room and taking the child in his hand enquired the child as to where all he got hurt, the latter denied that he was not hurt at all anywhere and there was no pain. When asked for the reason for his wailing badly, he exclaimed- "इतनी दूर से नीचे गिरा। मैं रोऊँगा नहीं क्या?" "I fell down from such a distance. Should I not wail





and weep? " This was a second miracle. A few days later when he went to Vasishta Guha, Guru Dev greeted him saying "Aye, are you looking after your children well?"

Perhaps the greatest of his maracle was myself. When I first came to him in 1956 October, I was absolutely raw and had no knowledge of spirituality. In the very first meeting I was ordered to do Srimad Bhagavata Saptaham - both reading and expounding its meaning, in the next forth coming Birth day of GuruDev in December. It was my first introduction to spirituality. This was repeated every year both during his life time and much latter to for a number of years. I never got any direct tution from him. After the Samadhi of my Guru Dev while in East Africa (TANZANIA) for nearly four years (Oct. 1967 to 1971) due to various pressures in the worldly life, I forgot my Guru, meditation, other spiritual practices and God too. My Guru Dev's hands were long and he was patient. Much later he applied his lasso to bring the wild horse under control. Through the

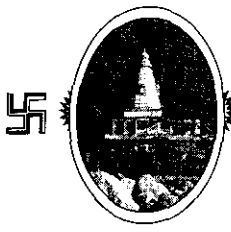
intervention of my senior Guru Bhai, Swami Nirvedananda, my close contact with Vasishta Guha and its inmates started from about 1978 culminating in my own taking Sannyas, after retirement, and completing nearly too decades of monkhood so far. My Gurudev used to tell me- "When I am with a body, my powers are limited. When once I leave my body, my powers to help my disciples will be unlimited." Every great master comes to this world with a list of people to be guided by him. Somehow, though not on the original list, I was brought by a wind of extreme luck to the door of my master. Atlast, my Guru Dev added my name as a foot note to his list. What a campassion? I do not deserve to be even a dust of my Guru Dev's feet.

How I came to the feet of my Master and my experiences with him are all detailed fully in my book "FRAGRANT FLOWERS' published in 2002 and available for seeing or downloading in the website no. "www. scribd.com/vedavita".

□□



A View of Holi Ganga from Ashram



## A Message from the President THE DIVINE LIFE SOCIETY

SHIVANANDANAGAR- 249 192, DISTT. TEHRI-GARHWAL, UTTARAKHAND, HIMALAYAS, INDIA

Revered Sri Swami Chaitanyanandaji Maharaj,  
Vashishta Guha.

Immortal Atmaswarup,  
Om Namō Narayanaya!

My loving Paranams to your revered self, Revered Sri Swami Shantanandaji Maharaj and everyone at the holy and sacred abode of Worshipful Brahmaleen Sri Swami Purushottamananda ji Maharaj.

Very happy to learn that you are bringing out a Souvenir in connection with the completion of 50<sup>th</sup> Mahasamadhi Anniversary of Worshipful Sri Swami Purushottamananda ji Maharaj. Swamiji Maharaj attained Maha Samadhi at the auspicious Brahma Muhurta time on the Maha Sivaratri Day. I had the good fortune of being there at that time along with one of the Gurubhai of our ashram, Swami Paripurnanandaji Maharaj.

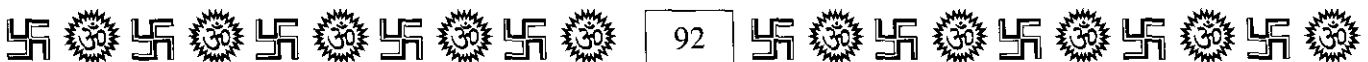
The news of Maha Samadhi had spread like a forest fire. People from nearby villages started gathering and they were the first to come. Swamiji Maharaj had done a lot of service to them in numerous ways that the villagers loved him so dearly. In the late noon a bus fully packed with devotees arrived at the ashram. I remember that Sardar Thirat Singh of Neelam restaurant of Rishikesh, who is no more, brought a carpenter to make the chair in the shape of palki.

The physical remains of Swami Maharaj was carried to the banks of Ganga while the gathering devotees sang the holy name of Panchakshri Mantra, Maha Mantra and other holy names of the Lord. The body was given a ceremonial bath while chanting Purusha Sukta, Narayanaya Sukta, etc. After the bath the body was covered with new clothes and garlands and Aarati was performed. After the aarati the body was placed in the palki in sitting posture and the palki was packed with heavy stones. Strong people slowly carried the palki to the mid stream and gently consigned it to the holy river Ganga while the devotees were chanting the name of the Lord. I had the rare opportunity of witnessing this sacred event.

Glory to Swami Purushottamananda ji Maharaj. May this event of Mahasamadhi Anniversary attain a grand success is my prayer.

With kind regards, Prem and Om.

Yours in the service of Gurudev,  
Swami Vimalananda,  
President.





ॐ

मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं गरुडध्वजः ।  
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः ॥

मंगलाशांसा

(The six verses composed by Anandapuri)  
English Translation by H.H. Swami Padmanabhanand Ji Maharaj,  
General Secretary, Divine Life Society, Rishikesh

गंगामाता उवाच -

मङ्गलं पुरुषोत्तंस ! ज्ञानभक्तिस्वरूपिणे ।  
त्यागवैराग्यरूपाय तापसायास्तु मङ्गलम् ॥

"Glory to Swami Purushottamananda, an embodiment of Supreme Knowledge and Devotion, a manifestation of Renunciation, Non-attachment and Austerity, Glory to thee.

घनकाननमध्यस्था वसिष्ठाख्या गुहा शुभा ।  
अत्रान्तेवासिभिः साकं तपोनिष्ठाय मङ्गलम् ॥

Glory to thee, who lived in the Holy Vasishtha Guha in the thick of forest with fellow renunciates.

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं भोगं बुध्वा सुदूषितम् ।  
त्यक्त्वा तं तप आस्थाय स्थितस्येहास्तु मङ्गलम् ॥

Glory to the Holy Saint who opted for penance having abandoned all the pleasures here in this world and the heavenly pleasures hereafter.

कर्म ज्ञानं तथा भक्तिः तिस्रोऽप्येताः सुसाधनम् ।  
स्वाचारैः स्थापितं येन तस्मा अस्तु सुमङ्गलम् ॥

Glory to thee, who set the path of Yoga of Action and Knowledge, by living, for others to emulate.

कुञ्जरा बलवन्तोऽपि सिंहाद् विभ्यन्ति दुर्बलात् ।  
शास्त्रवादरताश्चैवं भीतास्त्वत्तोऽस्तु मङ्गलम् ॥

Glory to thee, who by his very presence drives away the lip-vedantin even as a lion drives away the mighty elephant.

द्वैतवादिमुखानीत्यं योगवेदान्तयुक्तिभिः ।

सद्यः पिधातुं दक्षायाऽऽचार्यायास्तु सुमङ्गलम् ॥

Glory to thee, who with the wonderful eloquence in Yoga and Vedanta, is capable of establishing the Supreme Truth by meeting the arguments of pseudo-pundits.

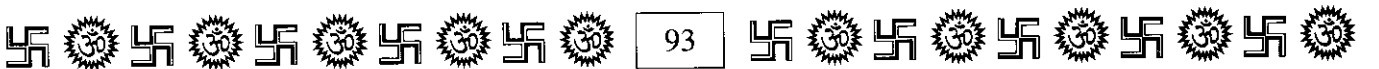
मङ्गलं पदमनाभोऽस्तु मङ्गलं पदमसम्भवः ।

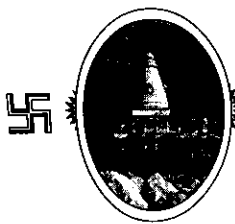
मङ्गलं गिरिजानाथो मङ्गलायतनं गुरुः ॥

इति आनन्दपुरिकृतं मङ्गलषट्कं

सम्पूर्णम्

Adoration to Lord Padmanabha, Lord Brahma and Lord Siva,  
the Consort of Girija and to the preceptor.





## A Brief Life Sketch Of Swami Purushottamananda Ji Maharaj "The sage of Vashishtha Guha"

-Swami Satprabhananda

Satchidananda Brahman which is ever existent in its True Nature, appears through the screen of Maya as infinite beings (Jivas) like infinite waves in the Ocean. Among these infinite Jivas, certain rare Jivas also appear in this world, born with special Divine qualities. They by their own self-effort and absolute self-surrender to God crush this screen of Maya and merge in their original nature of Satchidananda Brahman.

Swami Purushottamanandaji "The sage of Vashishtha Guha", as he was called was also one of such rare souls who crushed the screen of Maya and realised his own nature. He was born in Tiruvalla under the, then Travancore state which is now Kerala, on 23rd of November 1879 in a Nair family. His mother Parvati Amma and father Narayan Nair were very devoted to Lord Shiva. When the child took birth, they named him Neelakanthan in remembrance of Lord Shiva. At an early age of four Neelakanthan's educational career started, and he proved himself as very intelligent right from that time. At the age of fourteen when he was studying in Kattayam High School he first heard of Sri Ramakrishna Paramahansa of Dakshineswar from the lips of his headmaster. He became a subscriber to



"prabuddha Bharata", a monthly English magazine of the Ramakrishna Order, and started to imbibe the ideas and ideals of Sri Ramakrishna and Swami Vivekananda.

When he was still in the High School the Divine grace fell upon him in the form of rheumatism, as blessing in disguise. His parents tried their best to cure him, with the help of many expert Ayurvedic doctors but in vain. During the period of his illness, lying in bed he developed immense attraction for the universal Lord by reading Bhagavatam. He was convinced of the Lord's innumerable ways of helping his devotees. He had already heard of the lord of Guruvayyur who in a mystic way cured from rheumatism of Narayana Bhattathiri. The another of "Narayaneeyam." Without anybody's notice, one night Neelakanthan slowly slipped to Guruvayyur, limping dragging his paralysed right leg. Due to his strong faith in the lord his condition became better after some period's stay at Guruvayyur, and he walked back to Tiruvalla to surprise his parents and relatives.

From now onwards he became more devoted to Bhagavatam. He made Prahlad as his ideal who was a perfect blend of Bhakti and Jhana,





knowing that Sri Ramakrishna is no more in physical body, he was earnestly hankering to meet his direct disciples. At the time there was a small committee called "The Ramakrishna Association" in Tiruvalla started by local devotees to which Neelkanthan closely associated. Swami Nirmalanandji (Tulasi Maharaj), The president of Bangalore Ramakrishna Ashram and a direct disciple of Sri Ramakrishna visited Tiruvalla in 1911. His visit was a great boon to Neelkanthan to come closer to Sri Ramakrishna and his disciples. Slowly he became one of the main devotees of Nirmalanandaji. Seeing his true devotion to God and sincere efforts to realise him, the Swami named him as Neelkanthan Bhaktan, and started to inspire him with the ideals of "Renunciation and service", "Atmano Makshartham, Jagaddhitayacha". Finally Nirmalanandaji on 9th May, 1913 made him the president of "The Ramakrishna Association" at Tiruvalla.

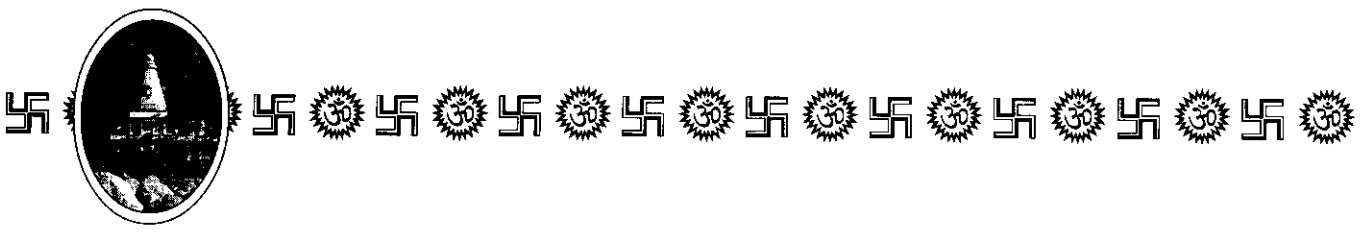
In 1916 Swami Brahmanandaji, the first president of the Ramakrishna Math and mission, and a spiritual son of Sri Ramakrishna Paramahansa was on a pilgrimage to Kanyakumari from Bangalore. At the request of Swami Nirmalananda he agreed to visit and stay few days at Haripad Ashrama on his way. Here Neelakanthan first met his spiritual Guru and had the privilege of serving him. At Haripad Nirmalananda told

Neelkanthan - "Bhaktan, Your god has arrived. You serve him and get yourself initiated." Thus he got initiation (Mantra Deeksha) from Swami Brahmanandaji at Hirapad in 1916. He was with his Guru through out his pilgrimage to Kanyakumari and other religious places upto Quilon. He wanted to accompany him to Belur Math also, but due to his responsibilities of Tiruvalla Ashrama has had to depart from his Guru at Quilan. He was very much depressed to leave Brahmanandaji at Quilon and expressed, "After leaving Maharaj I was without spirit for many days but gradually recovered."

The prophetic prediction of Nirmalanandaji "Bhaktan will go into a cave and go on meditating and meditating", and his Guru's departing message, "Meditate, meditate, no time to loose", were the foundation of Neelakanthan's future spiritual unfoldments. In 1922 during Durga Puja



Birth Place of Shri Maharaj Ji, Thiruvalla, Kerala



Neelakanthan came to Belur Math and stayed for about one and half years. He was initiated into Sanyasa by Swami Shivanandaji, the then president of the Ramakrishna order on full Moon day of October 1923 and became Swami Purushottamananda. Taking permission from Swami Shivanandaji, in 1924 he started for a pilgrimage to Northern India and Himalayas visiting Banaras, Allahabad, Ayodhya, Hardwar and Rishikesh he reached Uttarkashi in 1925. After staying for some months on spiritual practices he proceeds towards Gangotri via Dharali, to Kedarnath via Budha Kedar, to Badrinath via Dokhimath. He was in immense bliss when he reached Badrinath and felt most grateful to the universal lord for his infinite grace to bring a rheumatic paralytic man like him to the Lords highest Dhama. He clearly felt that the Lord can do make impossible possible by his mere grace. He chanted many times Geeta's Sloka.

“ मूक करोति वाचालम् पैंगु लङ्घयते गिरिम् ”

He returned to Uttarakashi via Kirtinagar, Deoprayag and staying some months there he came down to Brindavan via Tehri, Mussoorie, Hardwar and Agra. After staying for some months at Brindavan, he was again being attracted to Himalayas. He reached at Swaragashram in Rishikesh. It was here he first heard of Vashishtha Guha from a forest officer during his morning walks. After staying for some period at Swargashram he reached Ramguha at Brahmapuri and finally reached Vashishtha Guha on 19th June, 1929. During his pilgrimage and spiritual practices he was to undergo lot of severe tests in the hands of the Lord, but always depending on his Mercy. After staying some time here, he had to return back to Tiruvalla to look after the Ramakrishna Association affairs. But, this time he was full of renunciation and completely averse to work and public activities. As per his desire the Divine will also acted accordingly to change the events and circumstanceness at Tiruvalla which forced him to leave that place permanently and reside at

Vashishtha Guha. From October 1929 till the end of his mortal life in 1961 he stayed in the Guha.

At Guha he spent a serene meditative life quietly for one year. In 1930 he visited Amarnath, Kshir-Bhavani, Srinagar etc. and returned to Guha. Inspired by the spirit of Swami Vivekananda's service to humanity, he started a Junior High School in Goolardogi village situated at about two furlongs the Guha. This School is now a Government Inter College still bearings the reminiscence of Swami Purushottamanandaji. Except for short visits to South, Banaras, Allahabad, Lucknow and Delhi, he never moved out of Vashishtha Guha. During his tours to those places he inspired true seekers of God who ever came to him. As bees throng around a beautiful full bloomed-lotus, devotees, disciples, seekers of truth started coming to him as soon as he attained the Real state of love for God and true knowledge. He initiated more than thirty Brahmacharis into Sanyasa and gave initiation to lot of household devotees. People from Punjab, Kashmir, Haryana, Kerala, Uttarakashi, Uttar Pradesh etc. started coming to him for help in spiritual struggle and he also with a wide open heart, acting as an instrument in the hands of the universal Lord, imparted instructions to all who ever came to him irrespective of caste, creed or nationality. For devotees and disciples he was, mother, father, friend and everything in one.

On 13th February 1961 on Mahashivaratri night at 10:50 P.M. he left his mortal coil and merged with the Absolute. Just as all rivers with different names and forms merge into the Ocean dissolving their names and forms, so also, "Neelakanthan, Bhaktan, Purushottamnanda the sage of the Vashishtha Guha", merged into Absolute Brahman dissolving all those names and forms reminding us the Mukdakopanishad's Sloka-

“ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रऽ  
स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय  
तथा विद्वान् नारूपाद् विमुक्तः  
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ”

□□



# I Met the Lord

- Swami Purushottam Das

It was in the year 1956 Das met the Lord-the Bhagwan-in Vashishta Guha on the way to the Holy Shrine of Badrinath while Das was on a walking tour of our beloved motherland from Kerala. By then Das had covered more than seven thousand miles entirely on foot, during which Das had come across a good lot of sannyasins and sadhus who lived in palacious bungalows all self-contained, and those who live under the natural shades of trees. From all these our Maharaj is an exception. To Dasa's limited knowledge Maharaj was above all these. He was full of pure love, rather we can darely say that he was the embodiment of love like the Lord Krishna Himself. After this spiritual connection when Das got the golden opportunity to read Bhagwatham under his guidance. Das came to know that our master is no other than the Flute-master Lord Krishna. One can see the whole of Krishna-Leela in Maharaj if he is gifted.

and begged Him to write in notebook some good things to be followed by them later.

He got red and said, "You are staying with me try to study, from my daily life." It is very hard indeed. His punctuality nobody can follow. Anywhere when sincerity comes in Ramayana or Bhagwath He will ask to repeat the position. Once with very great pain. He asked Das, "Boy! where your sincerity has gone." Immediately Das understood only due to lack of it the master said this and Das became very cautious thereafter.

Once while climbing up to the road to catch the car, waiting for Him on the road, due to the Das's ego of youthfulness, Das offered Him help when He pushed Das aside, and ran up, and He reached the road well in advance when he was eighty two years old. Was it not to wash the ego in Das? The very meaning of Guru is this "गुकारौ अन्धकारश्च रुकार अन्निरोधनम् ।" Who washes away all the darkness of the aspirants, He is the Guru.

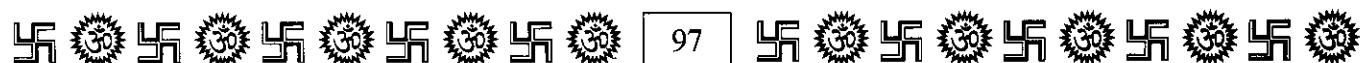
Even without inviting Him, He used to go to the houses of the qualified aspirants only to grace them, as Lord Krishna asked the cowboys for food to purify their food. Das's Guru Bhai, Srinivasan of Madras used to narrate all these with tears whenever we met in Madras. One can remember Maharajji for days and nights if they are gifted, because Maharajji loved all as His own children. His love was limitless like the ocean, rather He had an ocean of pure love.

To lift a qualified soul, Maharaj had no formalities. As Krishna says in the Bhagwatham ल्यधम-निवृत्तिश्चमोक्षधर्मरविस्तदा Maharaj followed this very strictly. He had only one aim i.e. to uplift the poor and downtrodden whoever it may be. He had no hesitation in this matter. He had no fear at all. Once He proclaimed that He did everything according to His inner voice. Perhaps this fearlessness lifted Him up to the lofty Himalayas of spiritualism. He used to say that spiritualism is not for the weaklings. To such a height in the spiritualism only few come. He used to say all his achievements are due to the Grace of His Rev. Guruji Master. It is said in the Shatras. गुरोरनुग्रहिरौबयुमानृपूर्ण प्रशान्तये He not only advocated the real path to the aspirants. He showed them too. Once an aspirant approached Him politely

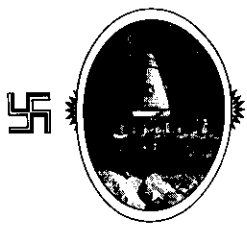
Very often He used to say, "Feel", "feel" and actually He felt for others. He not only said but also did it practically. Service to the poor was His real worship. For this He used to throw away all formalities even the poojas for example He used to skip up even the pooja rituals to feed the poor in times. He never waited for the completion of the poojas for this sake. He used to say when these talking gods are suffering from hunger what is the use of doing pooja. He waited for nobody in this affair. He was prepared to serve even half cooked food to keep the punctuality. See! His love and feelings towards the hungry Indeed, very rare.

Finally, He did not leave due to His Prarabdha, but as the Almighty Lord Krishna He left His body on His own accord and that is why He gave hints of His departure well in advance. To prove the divinity He joined with the infinite on the Holy night of the Holy Shivaratri to be with all the qualified aspirants.

"HARI OM TAT SAT"







## Vashist Guha - A Yogapeeth

- Brahm Sarup Khetrapal

Vashist Guha, as the name implies has been a puranic ancient guha since yore, with past history and traditions, hollowed by the stay, visit and being abode of many rishies and sages. During the last century, many saints like swami Ram Tirath and Papa Ramdas from Kannada Ashram, Travancore visited this place and stayed for seven days and five days respectively. Papa Ramdas had a vision here. Many modern saints and blessed souls by their visit have made it famous and sanctified. Some of them, Anand Mai Maa, Swami Shivanandji, Shri Chida nandji- Divine Life Society, Shri Chinmayanandji. Shri Sathya Sai Baba, Shri Asharam Babu, Sri Sri Ravishankarji maharaj- Art of Living, Swami Akhandanandji maharaj, Shri K.M. Munshi- Governor of U.P., Shankaracharyas of Badrinath Dham etc.

Swami Purushotamanand ji Maharaj Gurudev, who had completed the elementary 3 stages of karma, bhakti and gyana, i.e., harnessing of the indriyas, mind and buddhi, was ready for the final assault on the fourth stage yoga (harnessing the chitta, vrities, vasnas, kalpas, sankalps, etc.) moved to kailashkshetras (Himalayas). According to the directions of Sri Krishna to Arjuna to become a yogi after acquisition of Budhi yoga. Uddhao too was advised by Lord Krishna to proceed to Badridham for yoga after his elementary doubts were cleared, while departing from this world.

Guru Maharaj's first halt from South was at Swarg Ashram-Hrishikesh. He started his sadhana there but not being satisfied with the progress, having no interest in swarg, narak and upwarg moved further north. He was for higher aims. His companions however compromised with lesser gains according to their sadhana and result thereof. He found the present Guha most ideal, where he could pursue his sadhana in deep reflection,

introspection and meditation; merge, sub-merge in divinity and master the art of being and becoming, discover the history, mystery and chemistry of the self and God. The place, being most suitable for tapasya due to stillness, solitude with ever flowing Ganges and every funeral pyre burning in front of the cave reminded him about the transitory state of this worldly passing show made him dive deeper and deeper in the innermost chamber of his self. He lived for more than 3 decades at this Guha and came out with the most prized catch of his life's quest - realization "Om tat sat only God is true, none else."

Alama Iqbal, an Urdu poet had said, "Nafee hasti bhiek karishma hai diley aagah ka. Dil ke dariya mein nihan moti hai il Allah ka.

"With stillness and negation of worldly consciousness, one comes across a miracle; realized he discovers a pearl hidden in the heart beneath the life stream named Allah-god.'

Nanak too has said- "kotan mein ko-oo ramratan ko payee.'

Navratna, bharatratna are not so difficult, Ramratna award or reward is for the rarest few.

Guru Maharaj ji's departing evergreen message and invitation on every Shivratri day is being repeated by the ashram traditionally to the advanced sadhaks to come, stay and realize the truth on Shivratri. " Only SHIVA is true, all else ratri, darkness, falsehood."

Guha is a Siddha Peeth once a lady bhagata asked for permission from maharaj ji to go to Gitashram for satsang. Maharaj ji asked her to stay and exclaimed - "Every stone here will answer your call and remove your doubts." Welcome all. OM.

□□





## An English Saint of Rishikesh

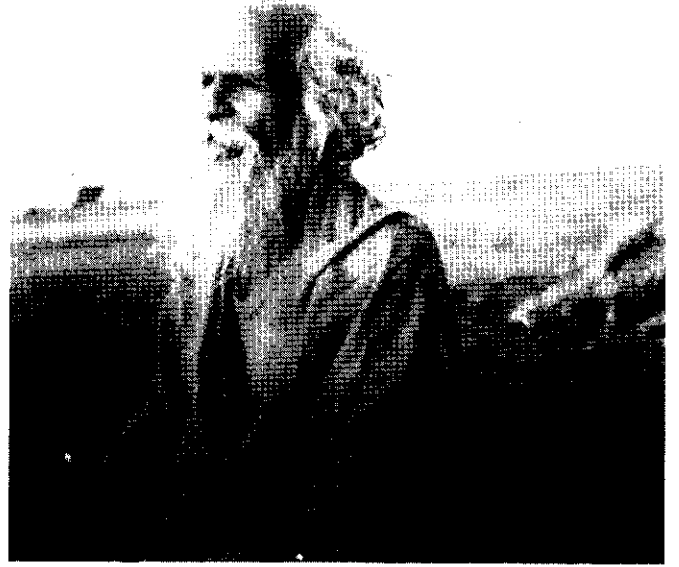
-Dr. A. N. Srivastava

Pujya Shri Gurudev Swami Purushottamananda Ji Maharaj, popularly known as, Vashishthaguha Ke Gurdev was sun of spirituality, transmitting the rays of spiritual light all round and the fragrance that spread from that centre made the Vashishthaguha a place of spiritual learning and means of God-realisation, through the sources of work and worship. The Guha is a place which even to-day gives a real glimpse of the Ashrams mentioned in scriptures about the ancient holy sages of India. The Bhagirathi flows in its magnanimous youthfulness at the feet of this Ashram.

The plantation on the sandy floor, the high trees on the hilly slope, the wandering cows and singing ripples of the river, give an atmosphere of real Rishi-Ashram. The mere environments of the place infuse in a man the cosmic effect of spiritualism and create a desire to concentrate on something more important than the materialism of present age.

His holiness Sri Purushottamanand Ji Maharaj lived a life of complete renunciation and devoted the greater part of his life in bringing his disciples to the higher planes of spiritual life. One who came in his contact could never forget him. He had such a cosmic force around him, that each one was attracted towards him. The greatest quality, assessed by others was his love and affection, he bestowed upon the people who came in his fold. Each one of them thought, and still believes, that Swamiji Maharaj had the greatest love for him. He was in reality an ocean of SACHCHIDANAND and any one could fill in, as many as possible the pitchers of, that nectar of spirituality which was over-flowing from the physical form of the greatest saint of our times.

The child like nature of Sri Swami Purushottamanandji was novel. Although, fathomless spirituality, unbounded simplicity, and



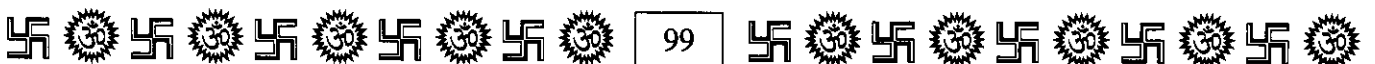
infinite love for truth were always manifested in his mind, worldly minded people found him a sticker for punctuality of time, cleanliness of body and the Ashram.

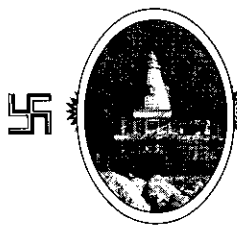
The fluency of English and his strict discipline of punctuality and cleanliness made him popularly known as "English Saint" of Rishikesh.

Sri Purushottamanand ji had those rare qualities which did not like publicity. He was quiet, and extremely simple in methods of living. But the fragrance of that flower, and the rays of his spiritual light, travelled so wide that he could not keep himself hidden. He was surrounded all the time by aspirant devotees for the lessons of truth and God realisation. Many of his discourses were taken into black and white.

I ever pray that Pujya Gurudev continues bestowing his blessing on his devotees; being as ever, omnipotent, omnipresent and omniscient.

□□





## A Unique Experience

-Dr. M.C. Mehrotra

I had my first darshan of Maharaj ji when he came to Barabanki in 1948-49 staying in the house of Late Sri. A.K. Vatal. I was a High School student then and wanted to ask some spiritual question from him. But I became tongue tied and could not muster enough courage to question him.

My parents were given initiation by him and we used to visit him every time he came to Lucknow (Shukla Ghat where he used to stay) reverberated with devotional fervour of hundreds of devotees. In his presence the atmosphere was electrified with the divine current of peace and harmony.

Once I went to Vashishtha Guha with my cousin brother during summer vacation some time in early fifties when I was about 18 years old. Unexpectedly he asked to come to him next morning after bath for "Mantra - Deeksha." It was sheer good fortune to be so blessed by Maharaj ji, even without our asking! During initiation he

asked me who is your Ishtha (Personal God). I replied "Ram". He accordingly gave me the "Ram Mantra" and asked me to go down to my room and meditate on the gracious form of the Lord. He told me to keep away from sexual attraction as the looks of a woman was like to a flame which would burn all one's virtue.

I had a vivid recollection of an incident which happened when I was sitting on a big rock on the banks of Gangaji in the evening of my initiation day. I heard celestial "Ram Dhun" (Raghu Pati Raghav Raja Ram-patita paavan Sita Ram) reverberating from all the corners of the hills and forest. I had read somewhere that whenever a 'genuine' Guru (Jagat Guru) gives "Mantra Deeksha", the receiver of the Mantra Deeksha sees a flash of brilliant light or hears celestial music or both. I was indeed blessed to hear the Heavenly music.

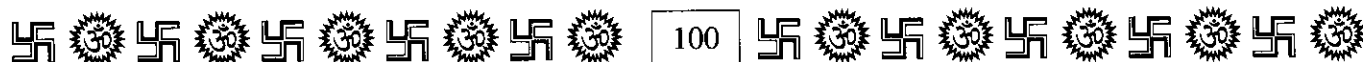
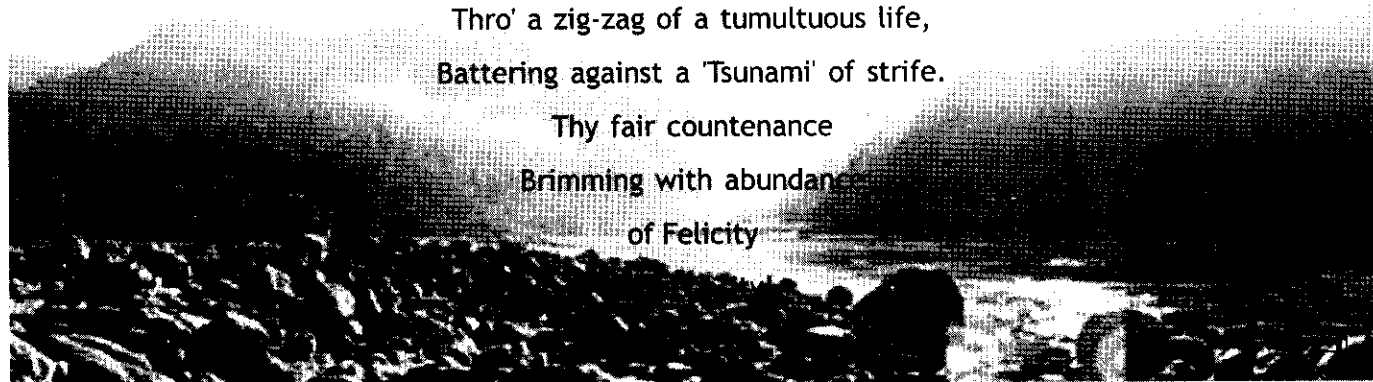
"Jai Jai Gurudev"



## Smile

-Dr. M.C. Mehrotra

Drawn by thy enigmatic smile,  
I've travelled many a mile  
Thro' a zig-zag of a tumultuous life,  
Battering against a 'Tsunami' of strife.  
Thy fair countenance  
Brimming with abundance  
of Felicity





# VASHISHTHA GUHA : THE GODLY INSTITUTION

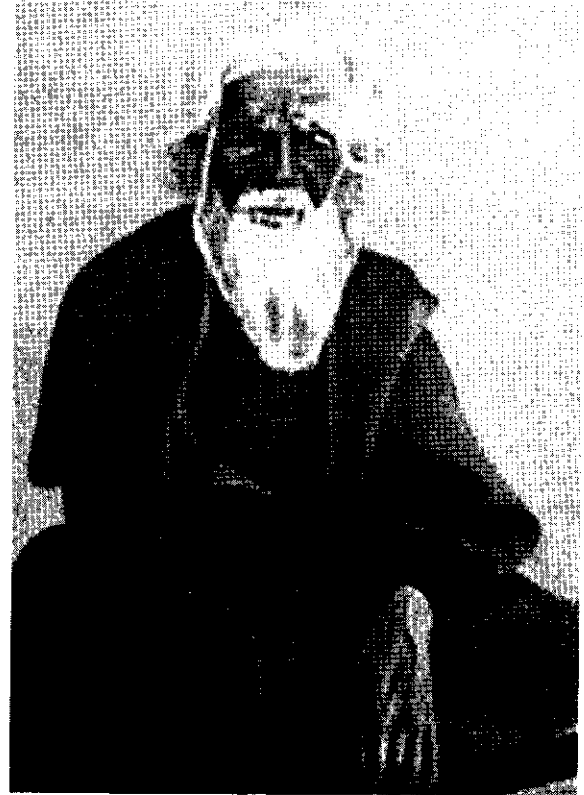
- Sushilesh Mohan Sahai

15<sup>th</sup> May, 1993. Yes, this was the day which heralded the advent of a new phase of enlightenment in my life. This was the beginning of my association with the Godly institution of "Vashishta Guha", when I first visited the place along with my wife Annie, my father-in-law Sri H.K. Srivastava, mother-in-law Smt Kusum Srivastava and brother-in-law Sri Ram Krishna, soon after my marriage on 5<sup>th</sup> May. 1993.

On my first visit, what appealed to me most about the place was its serene and sacred atmosphere, providing spiritual tranquility to the mind, heart and soul. Proximity to the pious Ganges as well as the surrounding natural beauty only added to its charms. And above all this, was the holy persona of adorable Swami Chaitanyanand-ji Maharaj, which had a spiritual aura ornate with unbelievable simplicity. His undivided dedication and devotion to Guru Maharaj-ji and Vashishta Guha was beyond words. One of the ardent disciples of Vashishta Guha, Dr. V.K. Sharma, said to me - "You are fortunate to be here": those words still linger in my memories.

This visit was just the beginning. Each of my subsequent visits here brought me closer to this pious institution; and feeling of nearness to God and spiritualism increased with each passing visit. There was gradual but definite development of faith and trust and belief that, by virtue of being privileged to be associated with this sacred place, all my worldly problems would be sorted out suitably.

The life thereafter has been punctuated with numerous moments/instances when the inner



This painting of Guru Maharaj was drawn by the author in 1993 in Shillong

strength given by the faith and devotion to Guru Maharaj-ji has enabled me to surmount any eventualities or to discharge my normal duties to the fullest. On several occasions, blessings of Guru Maharaj-ji on us were so very evident. To recall one such instance, when I first took Annie to my cadre Meghalaya in June 1993, this was the first time she was taking up such a long journey; and moreover, she was not well since the onset of the journey. After 40 hrs of train journey up to Guwahati and another 4 hrs of travel on a hilly road up to Shillong, her condition deteriorated considerably, and we were afraid that she would



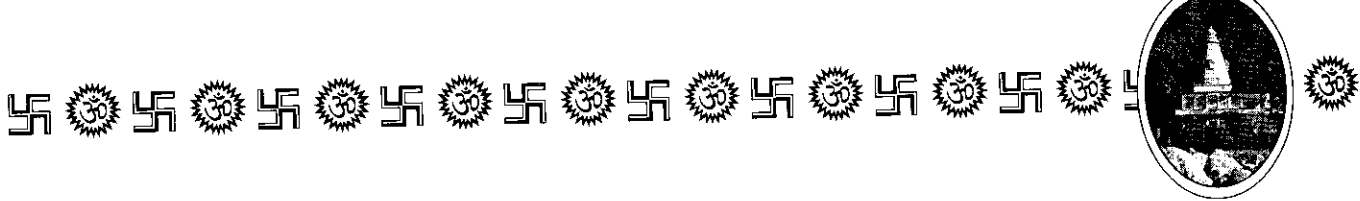
not be able to take up further journey to my place of posting. i.e. Jowai. But, to our pleasurable surprise, I got the news the same day that I had been promoted and posted to Shillong itself. We were so grateful to Guru Maharaj-ji for his kind blessings.

Ever since then, the confidence generated by the devotion to Guru Maharaj-ji has been immense. With a view to carry forward the torch of faith and devotion to the next generation, we

make all efforts to visit “Vashishtha Guha” with children as many times as we can. We also have regular monthly ‘puja exclusively of Guru Maharaj ji at our home, attended by all the family members of myself and my brother-in-law.

The vast ensemble of disciples of “Vashishtha Guha” would concur with me that the path to ultimate happiness and fulfillment is indeed through total devotion and complete submission to the realm of Guru Maharaj-ji.





## VASHISHTHA GUHA : TEENAGERS' PERSPECTIVE

- Shreshtha Shruti

GOD ... does God exist? If yes, ...then who is he? ...where is he? ... is he really there for us? These are some of the numerous questions that crop up in the mind of a young adult, a teenager. The answers to these questions exist... but where?

I am often overwhelmed with an immense sense of pride in me. Pride, because I feel I am one of those few lucky teenagers who have the answers to the questions above. This sense of pride has been generated by virtue of my fortunate association with the divine place Vashishtha Guha, and also the adorable Swami Chaitanyanand-ji whose inspiring presence and virtues make the place even more sacred.

My association with this holy place has been there since the day I was born. I am told by my parents that the day when I first came out of the hospital and reached my Nana's place in Thakurganj, Lucknow, Swami Chaitanyanand-ji was present there and I had the honour of his blessings, I am also told that my name "Shruti" was given by Swami Chaitanyanand-ji, who, noticing that I used to listen to everything very attentively since a very early age, said that her name should be "Shruti".

I do not remember my first few visits to Vashishtha Guha as I was very small. But since the day I started retaining things in my mind, I have a first hand account to share. Me and my family has always been taking frequent visits to this place. Now that I have come to think of it, my life would have been incomplete without this association. The place gives me a great sense of self-assurance, because I know that I am always protected by an invisible hand that will always be there for me - no matter what happens.

Vashishtha Guha is a place where I get the ultimate peace of mind. The daily 'Aarti', the regular 'paath' of 'Ramayana' and 'Geeta', in which I also participate quite often, and the overall atmosphere of the place fascinate me a lot. There is a strong sense of belonging and a deep bond attached to this place. The people and the place radiate positive vibes and have an aura of calmness and serenity. Above all, the divine presence of Swami Chaitanyanand-ji and his loving blessing to all of us make this place really delightful. It is the sense of being cared for; of having a home apart from your own; of knowing that, whatever happens, I will always have something to turn to.



## Wonderful Association with Vashishtha Guha

- Pavitra Sahai

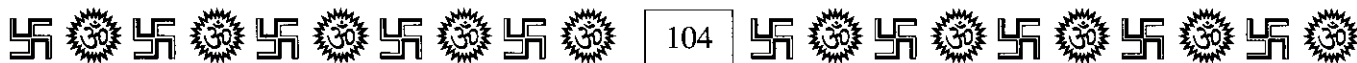
Some people believe in God, some don't, and some are not sure whether or not there is God. I was, initially, of the last category. My family always had the tradition of believing in God, but I, as a young mind, would look for proof.

I have been visiting Vashishtha Guha since 1996 when I was one and half month old. However, in my earliest memories of the place, I can remember a great wave of calmness hitting me. I found the place to be very different from the busy and noisy city life. The sound of Ganga water hitting the rocks really charmed me a lot; I had never experienced such a serene atmosphere before. It was a whole new world for someone like me. After each visit there, I found myself more eager to go there again.

These visits made me realize that it is extremely important and necessary for teenagers of today to be associated with an institution like Vashishtha Guha. It would open their minds and make them feel the existence of God. Meeting with Swami Chaitanyanand ji and getting his blessing has been an extremely divine experience for me. He has been so loving and caring for the disciples of Vashishtha Guha. Inspired by him, I started believing in God and praying to Guru Maharaj-ji. Whenever I have prayed to Him, help has always reached me in some way or the other.

I have a firm belief that God is always there with you; but, to see that, you must have full faith and dedication towards Him. I consider myself one of the luckiest persons to have such a wonderful association with Vashishtha Guha.

□□





# SHRI PURUSHOTTAMANAND TRUST

## VASISHTHA GUHA ASHRAM

Goolerdogi, Tehri Garhwal, Uttarakhand

(A brief report)

Vasishtha Guha is a holy place on the banks of river Ganga about 22 Km. from Rishikesh on the Badrinath motor road. The cave derives its name after the famous Maharishi Vasishtha of Hindu mythology. It is believed that the Muni practised tapasya in this cave. Brahmlin H.H. 1008 Shri Swami Purushottamanandji Maharaj also performed tapasya at this sacred place for a number of years and lived here from the year 1928 to 1961. Following the tradition of great Indian Saints he did not prefer to build any dwellings at Vashishtha Guha. For avoiding inconvenience to a large number of devotees and Saints visiting him, he consented at much later stage to the construction of three rooms of semipermanent nature.

Maharaj ji also started for the benefit of the local people of this remote locality, a school in the year 1949, which was run by "Brahmacharis". No sooner it was established and patronized by local people he got it handed over to the then Education Department of U.P. Govt. With his blessings the school has now been upgraded to the level of an Intermediate college.

Maharaj took Mahasamadhi on the auspicious parva of Mahashivratri on 13th February 1961. There were many disciples of Maharajji scattered all over India and abroad. A few of the Sannyasi Disciples lived at the Guha. After His Mahasamadhi, with the consent of all the inmates of the ashram

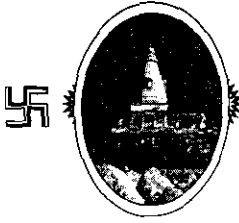
a trust was formed to maintain and keep the pious place intact so that a large number of his devotees, disciples and future spiritual aspirants may continue to be inspired and guided not only in spiritual aspects but also in solving their complex problems of material life. With this purpose a trust in the name of "Shri Purushottamanand Trust" was formed in the year 1962 with Sri B.K. Kaul, I.C.S. as its president.

The trust, since its inception has been receiving co-operation not only from the devotees who were fortunate enough to have had the 'darshan' of Maharajji or have met him but also from a large number of such persons who have later visited this holy place and felt attracted and inspired. The number of such devotees visiting Guha is continually increasing every year.

Now a number of foreigners, in small and large groups from all over the world frequently visit this place for meditation. The popularity of this place for its high spiritual vibration is increasing day by day.

The trust with the generous cooperation of the devotees has constructed a temple with the statue of Maharajji in 1975, a guest house near Dharam Shala which is on way to Ashram from motor road and an eight bedded hospital with residential accomodation for doctor and some additional rooms, bathrooms & toilet etc.





The trust is running the hospital. Medicines are given free of charge to the patients. An ambulance is also maintained to transport the serious patient in emergency to Rishikesh.

The trust has also been taking interest in the development of the school founded by Maharajji even after its handing over to the Govt. Stipends to the deserving children are also being given. Woollen sweaters and cloth for summer uniform is also given to all students of primary school and Govt. Inter College at Goolar.

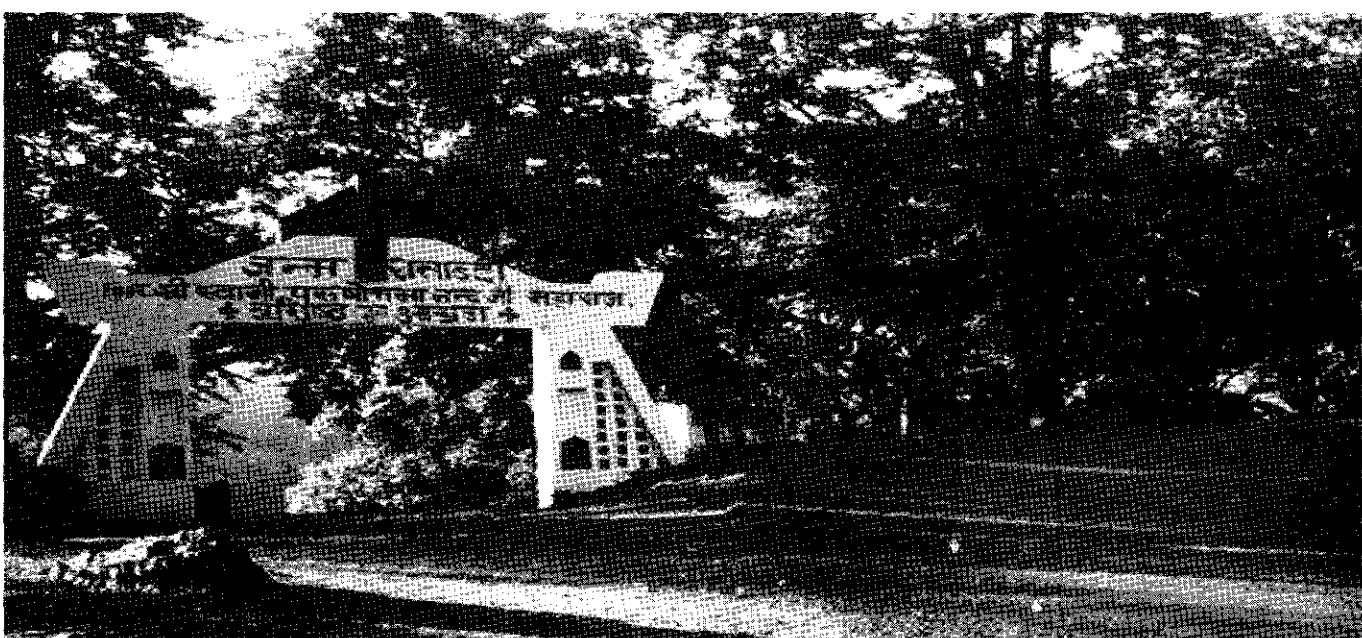
This year the 50<sup>th</sup> Mahasamadhi day of Maharajji is being celebrated on the coming "Shiv Ratri" 2nd March, 2011. On this occasion a special eleven day programme of recitation of original text with commentary of "Shiv Puran" is being organised starting from 21 Feb, 2011 On the day of Shiv Ratri, the Argah of Shiv linga Guha will be replaced by a new marble Argah. This Souvenir is also being published on this occasion.

The trust is very thankful to those who have taken the trouble in contributing articles depicting their experiences with Maharaj ji. The trust is also thankful to those with whose efforts this souvenir is being published in such a short time.

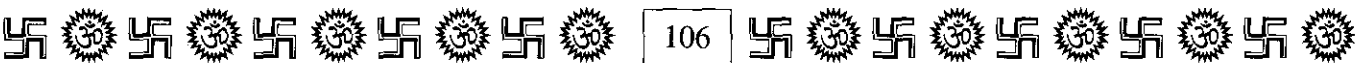
The trust is also very grateful to H.H. Swami Vimalanandaji, President, Divine life society, Rishikesh for sharing his personal experience and sending his blessings for the success of the Mahasamadhi celebrations.

In the end, the trust would not forget to express its humble gratefulness to Swami Chaityanand ji whom all know very intimately also about his totally dedicated services to the ashram for the last fifty years. The trust along with the devotees pray on this auspicious occasion to Guru Maharaj ji to bless us with very long association of Swami Chaityanand ji by bestowing on him long life.

□□



Gate Way to Vashistha Guha Ashram





आश्रम में वृक्षारोपण करते  
स्वामी चैतन्यानन्द जी



गणतन्त्र दिवस पर विद्यालय के छात्र आश्रम में आर्शीवाद लेते



गणतन्त्र दिवस पर अध्यापकों के साथ स्वामी जी



गणतन्त्र दिवस पर आश्रम में बच्चों को टॉफी बांटते स्वामी जी



आश्रम में स्थित गौशाला

## आश्रम के प्रकाशन

- अध्यात्म वार्ता
- The Life of Shri Swami Purushottamananda
- गीता की झलक
- A Peep into The Gita
- गुरु गीता
- Spiritual Talks
- उपदेशामृत
- Guide to Spiritual Aspirants
- ईश्वर कारुण्यम् – एक आत्मकथा

(Above books are available on  
Website: [www.scribd.com/vedavita](http://www.scribd.com/vedavita))